Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

SPS
809 P 77 P
15653

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रताप-समीक्षा

प्रेमनारायन टन्डन

"सौनाड/Saunaud"

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

296
A153
Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रताप-समीक्षा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आलोचना-साहित्य का आठवाँ प्रसून
Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

Pratap Samiksha

प्रताप-समीक्षा

पं० प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों का संग्रह
और उनके जीवन तथा साहित्य पर
समीक्षात्मक-विवेचन ।

स्कैन्ड/Scanned

Pram narayan.

लेखक
श्री प्रेमनारायण टंडन
अध्यापक-कालीचरन हाईस्कूल,
लखनऊ

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा ।

Sahitya- Ratan Bradar.

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकाशक
महेन्द्र, सञ्चालक
साहित्य-रत्न-भण्डार,
सिविल लाइन्स, आगरा।

acc: No: 15653
Rs 0-13-0
337

प्रथम संस्करण	बसन्त पंचमी १९९५ जनवरी १९३९	मूल्य बारह आना

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक
साहित्य प्रेस,
सिविल लाइन्स, आगरा।

Digitization by American Academy of Vedic Studies. AAIS(USA)

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
समालोचना १—६४			
१—अपनी बात	...	...	१
२—हिन्दी-गद्य का विकास	...	...	३
३—परिचय ...	...	...	१०
निबंध ६५—१४६			
४—शिव-मूर्ति ...	...	..	६५
५—गंगाजी ...	...	...	७६
६—धोखा ...	...	...	८०
७—काल ...	...	...	८६
८—धरती माता ...	...	...	९१
९—आप ...	...	...	९७
१०—बात ...	...	...	१०४
११—परीक्षा ...	...	...	१०८
१२—वृद्ध ...	...	...	१११
१३—दाँत ...	...	...	११५
१४—स्वतन्त्र ...	...	...	१२०
१५—खुशामद ...	...	...	१२९
१६—होली है ...	...	...	१३२
१७—सोने का डण्डा और पौंडा	...	...	१३९
१८—'ट' ...	...	...	१४२
टिप्पणियां १४७—१५६			

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Ethnic Studies, AAIS(USA)

हमारा आलोचनात्मक साहित्य

१—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

"श्री गुलाबराय की यह पुस्तक उत्तरदायित्व पूर्ण है, और संक्षिप्त इतिहास लेखन के लिए एक आदर्श है। इसमें हिन्दी के आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की समस्त धाराओं का सुबोध अवगाहन है।" मूल्य १।)

—हिन्दुस्तानी

२—जेबुन्निसा के आँसू

सम्राट् औरङ्गजेब की बेटी राजकुमारी जेबुन्निसा का नाम कविता-जगत में अमर रहेगा। यह पुस्तक उन्हीं की कविता पर आलोचना और परिचय-स्वरूप अपने ढंग की पहली और अनूठी है। बहुत ही आकर्षक और पढ़ने योग्य है। मूल्य १)

३—साहित्य की झांकी

"हिन्दी-साहित्य में अनेक 'इतिहास' 'विवेचनात्मक विकास' और 'विनोदों' के होते हुए भी इस झाँकी का अपना स्थान है। पुस्तक आद्योपान्त पढ़ जाने पर ज्ञात होता है कि लेखक के विचारों में मौलिकता, अध्ययन और विचार कूट-कूट कर भरी हुई है।" मूल्य ।।।)

—नवज्योति

४—गुप्तजी की कला

"प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने गुप्तजी की कला, दृष्टि-कोण, शैली, विषय, कथा-वस्तु तथा अभिरुचि पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया है। शुरू से आखीर तक लेखक का यह प्रयत्न रहा है कि कम ही दायरे में कवि की सारी विशेषताओं का प्रदर्शन हो सके। हमें यह कहते प्रसन्नता होती है कि वे इस प्रयत्न में काफी सफल हुए हैं। लेखक ने ऐसी सुन्दर पुस्तक लिख कर हिन्दी-साहित्य का वास्तविक कल्याण किया है।" मूल्य ।।।)

—मासिक विश्वमित्र

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

५—प्रसादजी की कला

"प्रस्तुत पुस्तक में प्रसादजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा पर भली-भाँति प्रकाश डाला गया है। आरम्भ में प्रसादजी की जीवन-कथा पर प्रकाश डाला गया है। इसके बाद प्रसादजी की कविताओं की आलोचना है और इसके बाद प्रसादजी के लिखे नाटकों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इसके अलावा पुस्तक में प्रसादजी के गीत, उनके उपन्यास, उनके महाकाव्य कामायिनी आदि पर सुन्दर निबन्ध हैं। पुस्तक प्रसादजी की कला से प्रेम रखने वालों के लिए बहुत उपयोगी है। ऐसी सुन्दर पुस्तक निकालने के लिए प्रकाशक महोदय बधाई के पात्र हैं।" मूल्य ।।।)

—साप्ताहिक विश्वमित्र

६—सुमित्रानन्दन पन्त

"प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसके लेखक पंतजी पर लिखने के सुयोग्य अधिकारी हैं। उन्होंने बड़े ही सहृदय दृष्टि से कवि पंत को जाना समझा है और एक कलाकार पर एक कलात्मक दृष्टिकोण से ही स्वच्छ प्रकाश डाला है। हिन्दी-समालोचना की शैली कितनी बदल गई है, यह इस पुस्तक से स्पष्ट ज्ञात होता है। जिस तेजी से हमारे साहित्य और कला की व्यञ्जनाएँ बदल रही हैं, उसी तेजी से समालोचना की तर्जे-अदा भी बदल रही है। पुरानी रुचि का जो साहित्यिक समाज वर्तमान साहित्य के स्पर्श में नहीं है, यह नई समालोचना शैली को देख कर एक बदले हुए संसार का अनुभव करेगा। लेकिन नई पीढ़ी, नए संसार और नए साहित्य को बड़े मनोयोग से ग्रहण कर लेती है। फलतः यह पुस्तक भी नई पीढ़ी के पाठकों के लिए उनकी अपनी चीज है।" मूल्य १)

—हिन्दुस्तानी

साहित्य और आलोचना की सभी पुस्तकें मिलने का एकमात्र स्थान—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अपनी बात

आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी-साहित्य-सेवा की परिचयात्मक आलोचना लिखने के उद्देश्य से, तीन वर्ष पहले, मैंने हिन्दी के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें देखी थीं। इनमें मुझे स्व० पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के विषय में दो लेख मिले। "सरस्वती" में स्वयं द्विवेदीजी का लेख था और "विशाल-भारत" में प्रो० रमाकान्तजी त्रिपाठी एम० ए० का। द्विवेदीजी का लेख "सुकवि-सङ्कीर्तन" में और बाद को "निबन्ध-नवनीत" की भूमिका के रूप में, संकलित हुआ तथा त्रिपाठीजी का लेख "प्रताप-पीयूष" की प्रस्तावना के रूप में। "प्रताप-समीक्षा" की भूमिका के "चरित्र और स्वभाव" आदि अंश लिखने में मुझे इन्हीं दोनों लेखों पर निर्भर रहना पड़ा है। इस विषय से सम्बन्ध रखते हुए दोनों महाशयों के भाव मैंने ज्यों-के-त्यों रखने का प्रयत्न किया है। इस सहायता के लिए दोनों विद्वानों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। भूमिका के अन्दर किसी स्थान पर यदि इन लेखों के अंशों को उद्धृत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है, तो मैंने लेखक महाशय का नाम दे दिया है।

"सरस्वती" के इस वर्ष के एक अङ्क में श्रीयुत गोपालराम गहमरी का एक लेख मिश्रजी के विषय में प्रकाशित हुआ था। गहमरीजी अपने को मिश्रजी का शिष्य मानते हैं। अतः मैंने इस पुस्तक की प्रस्तावना उनकी सेवा में संशोधन के लिए भेजी थी। मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि उन्होंने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अपना बहुत समय देकर उसे ध्यान से पढ़ा और उसमें यत्र-तत्र संशोधन भी किये। इसके लिए मैं उनका भी बड़ा कृतज्ञ हूँ।

मिश्रजी के लेखों के दो संकलन (१) निबन्ध-नवनीत और (२) प्रताप-पीयूष—मैंने देखे हैं; परन्तु "प्रताप-समीक्षा" में जिन लेखों का संकलन हैं उनमें तीन (वृद्ध, काल और बात) ऐसे हैं, जो उक्त दोनों ही पुस्तकों में नहीं हैं और तीन लेख (खुशामद, शिव-मूर्ति और सोने का डण्डा और पौंडा) प्रताप-पीयूष में तो हैं; परन्तु "निबन्ध-नवनीत" में नहीं। इससे जिन महाशयों ने मिश्रजी के लेखों के दो संकलन देखे हैं, उनका भी शायद कुछ मनोरंजन हो सकेगा।

एक बात और, भूमिका में मैंने मिश्रजी की कविता के उदाहरण कुछ अधिक दिये हैं। इसका कारण यह है कि मैं पुस्तक में उनकी कविताएँ संकलित न कर के भी यह चाहता था कि पाठक, मिश्रजी की कविता और तत्सम्बन्धी उद्देश्य से परिचित हो जायँ।

अन्त में मैं 'साहित्य-रत्न-भण्डार' के अध्यक्ष श्रीयुत महेन्द्रजी को धन्यवाद देता हूँ, जिनके सहयोग से "समीक्षा" पाठकों के पास पहुँचने योग्य हुई।

—प्रेमनारायण टण्डन।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हिन्दी-गद्य का विकास

हिन्दी-गद्य का आविर्भाव संवत् १२२९ में माना जाता है। इसका पहला उदाहरण दान-पत्रों में—जैसे "मेवाड़ की सनद" सं० १२२९—में मिलता है। फिर लगभग २०० वर्ष तक हिन्दी-गद्य की क्या दशा रही—इसका हाल हमें नहीं मालूम। कारण, इस सम्बन्ध में अभी तक विशेष खोज नहीं हुई है। इसके पश्चात् सं० १४०० से १७०० तक के कुछ लेखकों और उनके ग्रन्थों का पता लगा है, जो इस प्रकार है—

लेखक	ग्रन्थ	भाषा (साधारणतः)
(१) गोरखनाथ	सिष्ट-प्रमाण (सं० १४०७)	व्रजभाषा
(२) विट्ठलदास	शृङ्गार-रस-मण्डन	,,
(३) गोकुलनाथ	चौरासी वैष्णव की वार्ता, वनयात्रा, दो सौ वैष्णव की वार्ता।	,,
(४) नन्ददास	विज्ञानार्थ-प्रवेशिका	,,
(५) गंगाभाट	चंद छंद बरनन की महिमा (सं० १६२७)	व्रज और खड़ी बोली मिश्रित
(५) नाभादास	सं० १६५७ में लिखी अष्टयाम नाम की पुस्तक	,,
(७) महाकवि तुलसीदास	पंचनामा (सं०१६६९)	काशी की बोल-चाल की भाषा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(८) वैकुण्ठयार्ण-वैशाख माहात्म्य, अगहन माहात्म्य (सं१६८० के लगभग) } ब्रज-खड़ी मिश्रित

इन गद्य-ग्रन्थों की भाषा और शैली अत्यन्त अनगढ़ और शिथिल है। यह ग्रन्थ प्रायः ब्रजभाषा के गद्य में लिखे गये हैं। यद्यपि यह काल ब्रज-भाषा-काव्य के लिए स्वर्ण-काल था। तथापि गद्य के लिए धीरे-धीरे लोग खड़ी बोली को अपनाने लगे थे। इसका एक कारण यह था कि वह जनता की बोलचाल की भाषा थी। अतः इसके पश्चात् खड़ी बोली का युग आरम्भ होता है। काव्य-प्रगति के काल-विभाग के अनुसार इस खड़ी बोली के विकास-काल को, अपनी सरलता के लिए, हम निम्नलिखित चार भागों में बाँट सकते हैं—

(१) सं०१७०० से १९२५ तक—प्राचीनकाल या आविर्भाव-काल।
(२) सं० १९२५ से १९५५—तक मध्यकाल या भारतेन्दु-युग।
(३) सं० १९५५ से १९७५ तक—पुनर्जाग्रति काल या द्विवेदी-युग।
(४) सं० १९७५ से अब तक—आधुनिक काल।

आविर्भाव-काल

यद्यपि इस युग का कोई ग्रन्थ साहित्यिकता या मौलिकता की दृष्टि से महत्व का नहीं, तथापि भाषा के इतिहास में इस युग का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यों तो ब्रज-भाषा और राजस्थानी के कुछ ग्रन्थ इस काल में भी लिखे गये; पर खड़ी-बोली का निरन्तर विकास होता रहा। इस काल के कुछ लेखक ये हैं—

लेखक	ग्रन्थ	भाषा (साधारणतः)
(१) मनोहरदास निरञ्जनी—सं० १७०७		ब्रज-भाषा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेखक	ग्रन्थ	भाषा (साधारणतः)
(२) जगजी चारण	"रत्नमहेशदासोत-वचनिका" (सं० १७१५ के लगभग)	राजस्थानी
(३) दामोदरदास	"मार्कंडेय पुराण" का उल्था (सं० १७१५ के लगभग)	व्रजभाषा
(४) जोधपुर नरेश के पुत्र अमरसिंह (सं० १७३१-८१)	"गुणसार"	मारवाड़ी (खड़ी बोली मिश्रित)
(५) अमरसिंह कायस्थ (सं० १७६३-१८४०)	अमर-चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका)	व्रजभाषा
(६) सूरति मिश्र (सं० १७६७ के लगभग)	बेताल पचीसी	,,
(७) अग्रनारायण दास	"भक्त-माल प्रसंग" (सं० १८२९)	,,
(८) हीरालाल—'आइने अकबरी' का उल्था (सं० १८५१, पृ० ३५३)		व्रजभाषा
(९) बाँकीदास (सं०१८३८-९०)	आसिया चारण बाँकीदासरी ऐतिहासिक बातों	राजस्थानी
(१०) मुंशी सदासुखलाल नियाज (सं०१८०३-८१)	सुखसागर (श्रीमद्भागवत का अनुवाद)	खड़ी बोली

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेखक	ग्रन्थ	भाषा (साधारणतः)
(११) इंशाअल्लाखाँ	उदयभान चरित्र या रानी केतकी की कहानी (सं० १८५७ के लगभग)	खड़ी बोली
(१२) लल्लू लाल (सं०१८२०-८२)	प्रेमसागर (अनुवाद)	खड़ी बोली प्रधान
(१३) सदल मिश्र (सं०१८२४-१९०५)	नासिकेतोपाख्यान	खड़ी बोली
(१४) राजा शिवप्रसाद—कुछ पाठ्य-पुस्तकें		उर्दू के बहुत निकट हिन्दी
(१५) राजा लक्ष्मणसिंह (सं० १८८३-१९५३)	अभिज्ञान शाकुन्तल (सं० १९१९) और रघुवंश (दोनों अनुवादित हैं।)	शुद्ध खड़ी बोली
(१६) स्वामी दयानन्द (सं० १८७१-१९४०)	सत्यार्थ प्रकाश	हिन्दी (गुजराती की झलक है; पर उर्दू की नहीं)

उपर्युक्त जिन १६ लेखकों के नाम दिए गये हैं, उनमें पहले ९ का खड़ी बोली के निर्माण में कोई हाथ नहीं है; हाँ पिछले ७ लेखकों की उसके विकास पर छाप अवश्य लगी है। यों मुंशी सदासुखलाल को वर्तमान हिन्दी-गद्य का प्रथम लेखक हम मान सकते हैं। सदल मिश्र की भाषा भी उनसे मिलती-जुलती है। लल्लूलाल की भाषा, खड़ी बोली की प्रधानता होते हुए भी मुंशीजी की भाषा से कुछ भिन्न है; पर हिन्दी के प्रचार का प्रश्न

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)
अन्तिम तीन सज्जनों के समय में आता है। राजा शिवप्रसाद की उर्दू-प्रियता ने राजा लक्ष्मणसिंह सरीखे हिन्दी के पक्षपाती पैदा कर दिये। स्वामीजी की सुधार-भावना की उत्तेजना ने उसके पक्ष को और भी मजबूत कर दिया।

भारतेन्दु-युग

यहीं से भारतेन्दु-युग का आरम्भ होता है। वास्तव में हरिश्चन्द्र ही हिन्दी-गद्य के जन्मदाता हैं। उन्होंने उसे 'साहित्यिक' भाषा का रूप देकर उसके साहित्य के विभिन्न अङ्गों की पूर्ति का सराहनीय प्रयत्न किया। उस समय, "नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचार-धारा बदल चली थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे; पर साहित्य पीछे ही पड़ा था।" इस कमी को उन्होंने दूर किया और "हिन्दी को वे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आए।" फलतः कई विद्वान् उसकी उन्नति करने में संलग्न हुए और उसके विभिन्न अङ्गों की पूर्ति होने लगी। सर्वश्री कार्त्तिकप्रसाद खत्री, केशवराम भट्ट, श्रीनिवासदास, तोताराम, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, राधारमण गोस्वामी, राजा रामपालसिंह, बालमुकुन्द गुप्त, आदि का नाम इस समय के प्रमुख लेखकों में उल्लेखनीय है।

द्विवेदी-युग

परन्तु इस युग के लेखकों के हिन्दी-गद्य की स्तुत्य सेवा करने पर भी उसमें दो तीन त्रुटियाँ रह गईं—

(क) भाषा का प्रचार तो होने लगा था; परन्तु उसकी शुद्धता, संस्कार, और परिमार्जन की ओर लोगों का ध्यान अधिक नहीं था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(ख) शैली का कोई रूप स्थिर नहीं हुआ था।

(ग) हिन्दी-गद्य का प्रचार अधिक नहीं था।

हिन्दी-गद्य की तीनों त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न द्विवेदी-युग में किया गया। इसके लिए बड़े-बड़े साहित्यिक युद्ध हुए। पर अन्त में अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय के कारण इस युग के लेखकों को सफलता प्राप्त हुई। इस युग के प्रमुख लेखक, सर्वश्री महावीरप्रसाद द्विवेदी, बा० श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल गुलाबराय, बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्री गोपालराम गहमरी, मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, भगवानदीन, राधाकृष्णदास, पं० देवीप्रसाद पूर्ण, माधव शुक्ल, देवकीनन्दन खत्री, ज्वालादत्त शर्मा, सीताराम, रामचन्द्र वर्मा, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि-आदि हैं। इन लेखकों के सराहनीय प्रयत्न से, निबन्ध, समालोचना, नाटक, उपन्यास, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाज-शास्त्र, पुरातत्व, भ्रमण, जीवन-चरित्र, शिक्षा आदि अनेकानेक विषयों पर सुन्दर रचनाएँ होने लगीं।

आधुनिक-युग

ऊपर जो सूची दी गई है, उसमें के अधिकाँश महानुभाव हमें आधुनिक युग में ले आते हैं। बहुत से नये लेखक भी आज अपनी प्रतिभा-प्रभा से गद्य-साहित्य-संसार को आलोकित कर रहे हैं।

इनमें सर्वश्री स्व० जयशंकर 'प्रसाद', गोविंदवल्लभ पन्त, उग्र, सुदर्शन, बद्रीनाथ भट्ट, प्रेमचन्द, विश्म्भरनाथ कौशिक, गुलाबराय, वृन्द्रावनलाल वर्मा, रायकृष्णदास, श्रीराम शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामनाथ लाल, बाबूराव पराड़कर, नलिनीमोहन सान्याल, धीरेन्द्र वर्मा, जैनेन्द्र, बनारसीदास

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, सत्येन्द्र, नगेन्द्र प्रभृति लेखक हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति की ओर प्रयत्नशील हैं। यह द्विवेदी युग और आधुनिक युग के लेखकों के प्रयास का सुपरिणाम है कि आज हिन्दी-साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति हो रही है और हिन्दी आज राष्ट्रभाषा समझी जाने लगी है। उसकी यह उन्नति देख कर आज हमारा रोम-रोम पुलकित हो जाता है और हमें पूर्ण आशा होती है कि भविष्य में शीघ्र ही हिन्दी की आशातीत और अपूर्व उन्नति हो जायगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस आशा के पूर्ण करने की हमें शक्ति दे।

प्रेमनारायण टण्डन,
रानीकटरा, लखनऊ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिचय

वंश-विवरण

कानपूर से पाँच-छः कोस की दूरी पर उन्नाव शहर है। यहाँ से थोड़े ही फासले पर बैजेगाँव नाम का एक गाँव है। पं० प्रताप-नारायण मिश्र यहीं के रहने वाले थे। उनके प्रपितामह का नाम पं० सेवकनाथ था। इनके एक पुत्र था, इसका नाम पं० राम-दयाल था। कहा जाता है कि बड़े होने पर वे कविता करने लगे थे। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे प्रसिद्ध कवि नहीं थे। सम्भव है, उन्होंने कुछ कविता की हो। उनकी कविता का कोई नमूना नहीं मिलता, शायद पं० प्रताप नारायण को भी उनकी कोई कविता देखने को नहीं मिली, तभी उन्होंने इसका कुछ जिक्र कहीं नहीं किया है।

पं० रामदयाल के पुत्र का नाम पं० संकटाप्रसाद था। ये अच्छे ज्योतिषी हुए। इनकी आर्थिक दशा अच्छी न थी। इससे पं० संकटाप्रसाद को केवल १४ वर्ष की छोटी अवस्था में ही अपना जन्म-स्थान—बैजेगाँव—छोड़ना पड़ा। वहाँ से धनोपा-र्जन के लिए ये कानपूर पहुँचे और रामगंज नामक मुहल्ले में रहने लगे। सुनते हैं, इनका मकान नौघड़ा में अभी तक है।

कानपूर आकर पं० संकटाप्रसाद की आर्थिक दशा कुछ-कुछ सुधरने लगी। इनके भाई की स्त्री पं० प्रयागनारायण तिवारी के वंश की थीं। तिवारीजी कानपूर में रहते थे और वहाँ उनका बड़ा नाम था। इस सम्बन्ध के कारण पं० संकटाप्रसाद को कानपूर में रहने में बड़ा सुभीता हुआ। उन्होंने दीवान फतेहचन्द के यहाँ नौकरी करली। कतिपय कारणों से वे यहाँ अधिक दिन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
तक न रह सके। हाँ, अपनी ज्योतिष-विद्या के करण वे धीरे-धीरे प्रसिद्धि प्राप्त करने लगे, धन भी मिला और कुछ रियासत भी उन्होंने पैदा कर ली।

जन्म और शिक्षा

इन्हीं पं० संकटा प्रसाद के घर पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ६, संवत् १९१३ (सन् १८५६) में हुआ था। बालक प्रताप नारायण बड़ा ही चञ्चल था, किसी एक स्थान पर देर तक न ठहरता। वह मस्त रहता, किसी बात की चिन्ता न करता। उधर ज्योतिषी पिता, पुत्र को भी ज्योतिर्विद बनाना चाहता था और उसके लिए तदनुकूल शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया; पर शिशु प्रतापनारायण की मस्त तबियत जन्म-पत्र बनाने और ग्रह-नक्षत्र की गणना करने के झंझट में न फँसी। लाचार होकर पिता ने उसे एक अँगरेजी स्कूल में भर्ती कराया; परन्तु यहाँ भी उस चञ्चल बालक का मन पढ़ने-लिखने और पहाड़े रटने में न लगा। तत्पश्चात् प्रतापनारायण को पिता ने पादरियों के स्कूल में भेजा। यह स्कूल उस समय नयेगंज के पास था, पर अब नहीं है—टूट गया। इस स्कूल में भी स्वतन्त्र-प्रकृति का वह बालक पढ़ने में मन न लगा सका। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके अध्यापक उससे बुरी तरह पेश आने लगे। दण्ड मिलने लगा। बालक इससे और भी घबड़ा गया और अन्त में उसने स्कूल ही छोड़ दिया। अभाग्यवश, इसी समय उसके पिता की मृत्यु हो गई। इस कारण प्रतापनारायण के स्कूली जीवन का अन्त हो गया।

यह बात सन् १८७५ की है। उस समय पं० प्रतापनारायण की अवस्था लगभग १८ वर्ष की थी। स्कूल में अँगरेजी और हिन्दी का साधारण ज्ञान इन्हें हो गया था; परन्तु उन्हें इससे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सन्तोष न हुआ। विद्या से उन्हें बड़ा प्रेम था। स्कूल में भी यही बात थी किन्तु उनकी स्वच्छन्द प्रकृति वहाँ के नियमों का पालन न कर सकी थी। अब उन्होंने, घर पर ही, उर्दू का अभ्यास किया; साथ-साथ फ़ारसी और संस्कृत भी सीखी। थोड़ा-बहुत प्रेम इन्हें बँगला से भी था और उसका भी साधारण ज्ञान इन्हें हो गया।

संक्षेप में, पं० प्रतापनारायण अपने विद्यार्थी-जीवन में किताबी कीड़ा तो न बन सके, पर उनका ज्ञान (General knowledge) काफी विस्तृत हो गया। स्कूल में वे भूगोल या इतिहास की पुस्तकें तो नहीं रट सके, पर लोगों से मिल-जुल कर उन्होंने अनेक बातें सीख लीं। उनका यही अनुभव-जन्य-ज्ञान जीवन में उनके काम आया।

साहित्यिक मित्र

हिन्दी-साहित्य-सेवकों के जिस ढङ्ग के स्कूल आज लखनऊ, कानपुर, प्रयाग, बनारस, कलकत्ता, आगरा आदि में दिखाई देते हैं, उसी प्रकार की साहित्यिक मण्डलियाँ १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में स्थापित हो चली थीं। कानपुर, काशी और कलकत्ता में साहित्यिकों ने अपनी-अपनी गोष्ठियाँ—पाश्चात्य देशों के साहित्यिक क्लब के ढङ्ग की स्थापित कर रक्खी थीं। कानपुर में स्वयं मिश्र जी "ब्राह्मण" का सम्पादन करते थे; पं० ललिता-प्रसाद त्रिवेदी आदि अन्य सज्जन उनकी संस्था के सदस्य समझे जाते थे। काशी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की संस्था थी और कलकत्ते से "भारत-मित्र" का सम्पादन होता था।

इन साहित्यिक संस्थाओं में आज-कल का सा वैर-भाव नहीं पैदा हुआ था। स्पर्धा अवश्य थी, कभी-कभी शिष्ट हास्य में सवाल-जवाब भी हो जाते थे; परन्तु उनमें साहित्य-सेवा की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
शुद्ध-प्रेरणा थी; ईर्ष्या का अभाव था। इसी से एक दूसरे की साहित्य-सेवाओं को विशेष आदर की दृष्टि से देखते और सराहना कर के उत्साह बढ़ाया करते थे। भारतेन्दु की हिन्दी-सेवा पर तो मिश्र जी लट्टू ही थे। हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित "कवि-वचन-सुधा" आदि पत्रिकाएँ पढ़ने से ही उनके हृदय में हिन्दी के लिए प्रेम उत्पन्न हुआ था। इसी से भारतेन्दुजी पर मिश्रजी की बड़ी श्रद्धा थी। भारतेन्दु को अपना पूज्यपाद, उपास्यदेव, गुरु-देव, सभी कुछ मानते थे। दोनों के उद्देश्य और आदर्श में बहुत कुछ समानता थी, पर भारतेन्दु उनके पथ-प्रदर्शक-से थे। कई पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त हिन्दी का प्रचार करने और हिन्दी लेखकों को शिक्षा देने और उत्साहित करने के लिए उन्होंने कविता-वर्द्धिनी सभा (स्थापित सन् १८७० में) पेनी-रीडिंग क्लब (स्थापित १८७३ में) आदि संस्थाएँ स्थापित की थीं।

ऐसे भारतेन्दु पर मिश्रजी की भक्ति हो जाना स्वाभाविक ही था। "ब्राह्मण" में भी उनकी बड़ी तारीफ की गई थी। मिश्र जी में यद्यपि "कान्यकुब्जों" की ठसक थी; प्रकृति में उद्दण्डता और अहम्मन्यता भी काफी थी, तथापि उन्होंने भारतेन्दु के हाथ तक जोड़े हैं। कुछ लोगों ने उनके इस काम को पसन्द नहीं किया; यही नहीं, उन पर इसके लिए आक्षेप भी किया; पर मिश्रजी ने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया। वास्तव में, भारतेन्दु का भक्त होने का उन्हें गर्व भी था। एक बार उन्होंने लिखा था—

"बाजे-बाजे लोग हमें श्रीहरिश्चन्द्र का स्मारक समझते हैं। बाजों का ख्याल है कि उनके बाद उनका-सा रंग-ढंग कुछ इसी में है। हम को स्वयं इस बात का घमण्ड है कि जिस मदिरा का पूर्ण कुम्भ उनके अधिकार में था, उसी का एक प्याला हमें भी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दिया गया है और उसी के प्रभाव से बहुतेरे हमारे दर्शन की देवताओं की भाँति इच्छा करते हैं।"

मिश्र जी की इस श्रद्धा और भक्ति का एक कारण भारतेन्दु की गुण-ग्राहकता भी है। मिश्र जी ने "प्रेम पुष्पावली" नाम की एक पुस्तक लिखी थी। समय की दृष्टि से वह अच्छी चीज थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसकी तारीफ की। इससे मिश्रजी का उत्साह बढ़ा। "हरिश्चन्द्र की आलोचना गोया इनके सुलेखक और सुकवि होने की एक शिला-लिखित सर्टिफिकेट हो गई।" इस बात को इन्होंने कई बार बड़े गर्व से कहा था। हरिश्चन्द्र पर तो उसके बाद से ऐसे लट्टू हुए कि अपनी कई पुस्तकों के आरम्भ में इन्होंने "हरिश्चन्द्राय नमः" लिखा है और भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् "हरिश्चन्द्र-संवत्" लिखा करते थे।

भारतेन्दुजी एक बार सख़्त बीमार पड़े; पर भाग्य से शीघ्र ही अच्छे हो गये। यों तो उनके स्वास्थ्य लाभ से समस्त हिन्दी-साहित्य-सेवियों को बड़ी प्रसन्नता हुई, पर मिश्रजी के आनन्द का तो वारापार ही न रहा। उन्होंने उनके स्वास्थ्य लाभ के उपलक्ष्य में एक क़सीदा लिखा था। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

ख़्याल आया मुझे दिल में य किसका गुस्ले सेहत है।
कि सारे हिन्द में जिसकी खुशी सबने मनाई है॥
तो मुलहिम ने कहा बाबू हरिश्चन्द्र इसमें पाक उस्का।
नहीं मालूम ? जिसकी मदहख़्वाँ सारी ख़ुदाई है॥
बनारस की ज़मी नाज़ा है जिसकी पायबोसी पर।
अदब से जिसके आगे चर्ख़ ने गरदन झुकाई है॥
वही महताबे हिन्दुस्तां वही ग़ैरत दिहे नैयर।
कि जिसने दिल से हर हिन्दू के तारीकी मिटाई है॥

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वही ईसाए दौरां जिसने हम क़ौमो की हिम्मत की।
हजारों साल पीछे लाशे बोसीदा जिलाई है॥
वही उसने कि उर्दू देवनी के पंजये जुलसे।
वसद तदवीरों हिम्मत जान हिन्दी की बचाई है॥
वही जो आज मालिक है सब इल्मों के ख़जाने का।
वही मुल्के हया खूवी पय जिसकी बादशाही है॥
ज़िहे वह अफ़ज़लुल फ़ज़ुला कि आज उसकी शहादत में।
ब सिदके दिल हर एक उस्ताद ने उंगली उठाई है॥
सब उसके काम ऐसे हैं कि जिनको देख हैरत से।
हर एक आकिल ने अपनी दाँत से उंगली दबाई है॥

× × × ×

जहाँ तक कीजिये तौसीफ़ उसकी सब बजा लेकिन।
नहीं उरफ़ी को दावा दूसरों की क्या चलाई है॥
यही बेहतर है कि उसके हक़ में हमदम दुवा माँगे।
यही बस फर्ज़ अपना है इसी में सब भलाई है॥
खुदाया खुश रहे वह फ़ख्ते आलम रोज़े महशर तक।
कि जिसकी ज़ाते बा बरकत को ज़ेबा सब बड़ाई है॥

इन पंक्तियों से यह पता लग सकता है कि मिश्रजी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को कितने आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इसी प्रकार भारतेन्दु के अस्त होने पर उन्होंने "शोकाश्रु" नामक एक लम्बी कविता लिख कर "ब्राह्मण" में प्रकाशित की थी। इस विलापात्मक कविता में भारतेन्दु के गुणों का खूब बखान किया गया था। वास्तव में, उनमें गुण भी ऐसे थे। इसी से तो आज भी उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। अस्तु।

मिश्र जी कलकत्ते के साहित्य-सेवियों का भी सम्मान करते थे। वहाँ से उस समय "भारत-मित्र" का सम्पादन होता था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित गोविन्द-नारायण मिश्र, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्री अमृतलाल चक्रवर्ती आदि हिन्दी की उन्नति करने में लगे हुए थे। हिन्दी के इन पक्षपातियों पर उनका श्रद्धाभाव होना भी स्वाभाविक ही था। साथ ही, निरभिमानी और मिलनसार तथा हास्य और विनोद प्रिय होने के कारण, उनके अनेक मित्र थे। हास्यरस के कुशल लेखक और आनन्द (लखनऊ) के सम्पादक पण्डित शिवनाथ शर्मा से भी उनकी खूब पटती थी। मिश्रजी जब लखनऊ आते थे, तब इन्हीं के यहाँ ठहरते थे और शर्माजी, शायद "बालक" में अपने लेख प्रकाशित होने के लिए भेजा करते थे। इसका कारण यही हो सकता है कि दोनों ही हास्यरस के प्रेमी और विनोदी थे।

स्वभाव और चरित्र

पंडित प्रताप नारायण मिश्र का रङ्ग गोरा था। उनकी नाक बड़ी थी और शरीर दुबला-पतला था। वे प्रायः अस्वस्थ रहा करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि उनका आहार-विहार अनियन्त्रित था। उनको अपने शरीर की परवाह ही न रहती थी और न वे शरीर रक्षा के नियमों का पालन करना ही आवश्यक समझते थे। शायद इसी से जवानी में ही उनकी कमर झुक गई थी और थोड़ी ही अवस्था में उनका देहान्त हो गया।

मिश्रजी सिर के बाल बड़े रखना पसन्द करते थे। पर वे हमारे आधुनिक नवयुवकों की तरह उनके बनाव-शृङ्गार में दिन भर नहीं लगाते थे—शायद कभी-कभी ही बनाते थे। उनकी दाढ़ी बड़ी थी और मूछें भी काफी बड़ी थीं। उन्हें अपने इस रूप का घमंड भी था और "सुघर रूप" तक का प्रयोग वे अपने लिए कभी-कभी किया करते थे। पर वास्तव में उनका रूप तो नहीं, हाँ,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
स्वभाव अवश्य ही सुन्दर था। उनमें उत्साह था, देश, जाति, धर्म और भाषा के लिए अभिमान था। देशी-वस्तुओं और कपड़ों का वे आदर करते थे। सादगी की वे मूर्ति ही थे। परवाह उन्हें किसी की भी न थी। "आपको न मानै ताके बाप को न मानिए" के वे जबर्दस्त मानने वाले थे। जो उन्हें बुरा लगता था, उसकी वे कड़ी आलोचना करते थे। जब कभी सरकार या म्यूनिसिपैलिटी की ओर से किसी प्रकार का अनुचित कर जनता पर लगाया जाता, तब वे जन-साधारण का पक्ष लेकर "ब्राह्मण" में उसके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा कर देते थे। ढोंगी पंडितों और कनौजियों को तो उन्होंने खूब फटकारा ही था, साथ ही, जिन लोगों ने सुधारक बन कर जनता को ठगना चाहा था, उनकी मिश्रजी ने बड़ी दुर्गति की थी। उनके स्वभाव में स्वच्छन्दता अधिक थी। स्वच्छन्द विचारों के कारण ही बचपन में उन्हें मिशन स्कूल छोड़ना पड़ा। वहाँ एक पादरी शिक्षक था। हिन्दू धर्म के विरुद्ध उसने कुछ बातें कहीं। अन्य विद्यार्थी तो सब कुछ सुन कर भी चुप रहे, पर मिश्रजी से न रहा गया और उसे मुँह तोड़ जवाब देकर आप घर वापिस चले आये।

मिश्रजी, वास्तव में बड़े मौजी जीव थे; जो मन में आता, वही करते। अपने मित्रों के खुशामद करने पर भी, वे कभी उनके घर न जाते; पर कभी-कभी बे बुलाए ही पहुँच जाते और दिन-दिन भर पड़े रहते। अपने मित्रों की वे गोशमाली भी किया करते थे; सम्भव है, वे भी इनके साथ वैसा ही वर्ताव करते हों। वे आलसी भी बड़े थे। उनके कमरे में कूड़ा पड़ा रहता, अखबार चिट्ठियाँ, बिखरी पड़ी रहतीं। मिश्रजी को उनके बीच में बैठे रहना तो कबूल था, पर हाथ हिला कर उन्हें उठाना और साफ करना नहीं। उनके मित्रों को कभी-कभी यह गन्दगी बहुत बुरी लगती थी और वे स्वयं ही उसे साफ किया करते थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वे बड़े दिल्लगीबाज थे। होली में कबीरें गाते फिरते थे। एक बार एक दूकानदार को बनाने लगे। वह बहुत नाराज हुआ; पर ज्यों-ज्यों उसका क्रोध बढ़ता गया त्यों-त्यों इनकी कबीरें भी जोरदार होती गईं। शहर का कोतवाल उस दूकानदार का मित्र था। उससे उसने मिश्रजी की शिकायत की। कोतवाल ने मिश्र जी से सब बात कह दी। दूसरे दिन पण्डित प्रतापनारायण मिश्र नम्रता और विनय की मूर्ति बने उसकी दूकान पर पहुँचे और इस ढंग से आपने दूकानदार से माफी माँगी कि सभी को हँसी आ गई—स्वयं दूकानदार भी हँसने लगा। दूसरी बार की बात है कि एक त्रिपाठी जी उनसे मिलने आये। मिश्र जी ने उनके जलपान के लिए नौकर से जान कर जलेबियाँ मँगाईं। पर जब नौकर नाश्ता लाया, तब आप बनावटी क्रोधित स्वर में बोले—जानता नहीं, त्रिपाठीजी अन्न की मिठाई नहीं खाते। बेचारा नौकर सकपका गया।

पादरियों से तो उन्हें खास तौर से एक प्रकार की घृणा थी। वे लोग शहर के भोले भाले लोगों को धर्म से च्युत करने को भाँति-भाँति के लालच दिया करते थे। मिश्रजी इसका बड़ा विरोध करते थे। एक दिन एक पादरी ने उन्हें लज्जित करने के लिए पूछा—आप गाय को माता कहते हैं ?

'जी हाँ !' मन-ही-मन कुछ क्रोधित होकर उन्होंने कुछ दिल-चस्पी लेते हुए उत्तर दिया।

पादरी ने मन-ही-मन प्रसन्नता का अनुभव करते हुए हँसी दबा कर पूछा—'तो बैल को पिता कहते होंगे ?'

मिश्र जी उसका आशय कुछ-कुछ समझ गये, पर सावधानी और धैर्य से उत्तर दिया—'जी हाँ, बेशक।'

पादरी मुस्करा दिया; बड़ी लापरवाही दिखाते हुए उसने पूछा—'पर उस दिन तो मैंने एक बैल को मैला खाते देखा था ?'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चारों ओर खड़े हुए लोग मिश्रजी की ओर ताकने लगे। पण्डितजी ने भी एक बार उनकी ओर देखा; फिर पादरी की ही 'टोन' में लापरवाही दिखाते हुए कुछ शीघ्रता से उत्तर दिया—'साहब, वह बैल ईसाई हो गया होगा। हमारे समाज में ऐसे भी बहुत से बैल हैं।'

लोग अट्टहास कर हँस पड़े। पादरी साहब लज्जित हो गये।

मिश्रजी को नाटक का भी बड़ा शौक था। वे प्रायः नाटक में पार्ट किया करते थे। एक बार उन्हें स्त्री का पार्ट करना था। इसके लिए मूँछें मुड़वाना आवश्यक था। अतः आप अपने पिताजी के पास जाकर रिहर्सल-सा करते हुए विनीत भाव से विनय के स्वर में परिस्थिति समझाते हुए बोले—यदि आज्ञा हो तो इन्हें मुड़वा दूं। मुड़वाना जरूरी है ?

पिता ने हँस कर आज्ञा दे दी।

मिश्र जी को किसी प्रकार का, सुनते हैं, व्यसन न था। हाँ, वे नास अवश्य सूँघा करते थे और वह भी दिन भर।

मिश्र जी ने अपनी तारीफ भी की है। संगीत शाकुन्तल में उन्होंने लिखा है—

"कौसिक-कुल-अवतंस श्री, मिश्र संकटादीन।
जिन-निज बुधि-विद्या-विभव, वंश प्रशंसित कीन ॥१॥
तासु तनय 'परतापहरि', परम रसिक बुधराज।
'सुघर रूप', सत कवित बिन, जिहि न रुचत कछु काज ॥२॥
प्रेम परायन सुजन प्रिय, सहृदय नवरस-सिद्ध।
निजता निज-भाषा-विषय, अभिमानी परसिद्ध ॥३॥
श्री मुख जासु सराहना, कीन्हीं श्री हरिश्चन्द।
तासु कलम करतूति लखि, लहैं न को आनन्द ॥४॥"

वास्तव में यह आत्म-श्लाघा नहीं है, जैसा लोग समझते हैं। बात यह है कि कविता-समाजों की स्थापना के कारण उनके

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

समय में, इस प्रकार का पद्यात्मक परिचय देना प्रचलित हो गया था। मिश्रजी ने भी इसी प्रचलित परिपाटी का अनुसरण किया। हाँ, इन पंक्तियों के विषय में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मिश्रजी की प्रसिद्धि इस प्रकार की परिचयात्मक 'आत्म-श्लाघा' से बढ़ती नहीं। उनके कार्य ही उनकी ख्याति के लिए काफी हैं, फिर इसकी आवश्यकता ही क्या थी। यह तो समाज का दुर्भाग्य समझना चाहिए कि थोड़ी ही अवस्था में उनका देन्हान्त हो गया। अन्यथा उनसे जाति, समाज और साहित्य का बड़ा उपकार होता।

उद्देश्य

पं० प्रतापनारायण मिश्र के समय में हिन्दी-भाषा की उन्नति तो नहीं हुई थी, पर हिन्दी की उन्नति करने की ओर लोग सचेत हो कर अग्रसर हो रहे थे। हिन्दी-भाषा-भाषियों में से कुछ लोगों ने यह समझ लिया था कि यदि अपनी सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति सुधारना है, तो हिन्दी-भाषा की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

इन लोगों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मुख्य थे। उनका उद्देश्य भी हिन्दी-सेवा करना था; किन्तु उनकी साहित्य-सेवा पर राष्ट्रीय भावों का प्रभाव अधिक था। इसके विपरीत, मिश्रजी के हृदय में सामाजिक और धार्मिक सुधार करने की इच्छा प्रबल थी। धार्मिक-सुधारों का कारण, यही समझ में आता है, जन-साधारण का अपना धर्म छोड़ कर पादरियों के चक्कर में पड़ जाना था। ये लोग उस समय, अपनी धार्मिक पुस्तकें बांटते फिरते थे। उनके बहकाने और कभी-कभी डराने-धमकाने में आकर हिन्दू-जनता अपने धर्म से च्युत हो रही थी। सामाजिक-सुधारों का कारण कुरीतियाँ थीं। हिन्दू-समाज पर विदेशियों का प्रत्यक्ष

Digitization by American Academy of Indic Studies. Austin (USA)

प्रभाव पड़ रहा था। हिन्दुओं की रहन-सहन, वेश-भूषा, चाल-ढाल, सब विदेशी ढंग की होती जा रही थी। दूसरी ओर समाज के अन्तर्गत, अधिकांश हिन्दुओं में अन्ध-विश्वास फैला हुआ था और कुछ लोग बड़ी धाँधली मचा रहे थे। मिश्रजी का साहित्य-सम्बन्धी उद्देश्य उनके इस कथन से ही प्रकट हो जाता है—

"आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, अब यह चिन्ता खाये लेती है कि कैसे इस से पीछा छूटे।"

मिश्रजी ने "उर्दू से पीछा छुड़ाने" के लिए सरल और रोचक भाषा का आश्रय लिया, क्योंकि वे जनता के हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न करना चाहते थे। इस कार्य में सफल होने के लिए उनके पास दो ही मार्ग थे। पहला, उर्दू के दोष दिखाना। इससे उर्दू के लिए घृणा-भाव पैदा होता। दूसरा, हिन्दी को ऐसा रूप देना जिससे जनता का ध्यान स्वयं उसकी ओर आकृष्ट हो जाय और उर्दू का वहिष्कार कर हिन्दी को अपना ले। मिश्रजी ने दूसरे मार्ग पर चलना शुरू किया, क्योंकि यह अपेक्षाकृत सरल था। दूसरा कारण यह भी था कि भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य हिन्दी-साहित्य-सेवी भी इसी को अपना रहे थे। उन्होंने समझ लिया था कि हिन्दी को उर्दू के शिकंजे से निकालने का कार्य, एक दम उर्दू का वायकाट कर देने से नहीं हो सकता; वरन् उर्दू को थोड़ा-बहुत अपना कर ही हम अपने प्रयत्न में सफल हो सकते हैं।

सामाजिक विचार

मिश्रजी के समय में कई प्रकार के सामाजिक आन्दोलन हो रहे थे। वे प्रायः उन सभी के पक्ष में थे। हिन्दू-समाज में जितनी भी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बुराइयाँ उन्हें दिखाई देती थीं, वे उन सभी को दूर करना चाहते थे। स्वयं वे स्वतन्त्र प्रकृति के थे; किसी प्रकार के सामाजिक बन्धन में बँधना उनके लिए असह्य था। पाखण्ड और दिखावे (Formality) से वे घृणा करते थे। स्पष्टवादी वे इतने थे कि स्वयं कनौजिया ब्राह्मण होने पर भी उन्होंने अपनी जाति में फैलने वाली कुरीतियों को छिपाने की कभी चेष्टा नहीं की। जब-जब उन्हें अवसर मिला, वे जाति के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कर्णधारों पर छींटा फैंका करते थे। "ककराष्टक" शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है—

"का खा गा घा हूँ बिन पढ़े तिरवेदी पदवी धरन।
कलहप्रिय जियत कनौजिया, भारत कँह गारत करन॥"

एक लेख में इन्होंने कान्यकुब्जों की उत्पत्ति के विषय में मज़ाक करते हुए लिखा है—

"इनकी पैदाइश विराट भगवान के मुख से है और मुख ऐसा स्थान है, जहाँ थूक भरा रहता है। फिर जो थूक के ठौर से जन्मेगा, वह कहाँ तक थुकैलापन न करेगा।"

एक बार "फक्कड़ और भंगड़" शीर्षक एक कथोपकथन इन्होंने लिखा। यह ब्राह्मण में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धी पर ही आक्रमण किया था। इस पर उनके सम्बन्धी महाशय खूब बिगड़े। पर मिश्रजी को इसकी क्या चिन्ता थी। वे तो कहा करते थे—

"आँकु न जानै संसकरिति को लेहुँ न गायत्री को नाउँ।
तिनका आरज कैसे कहिये, मैं तो हिंदू कहत लजाउँ॥"

उस समय कोट-पैंट पहन कर ईसाई बनने का रिवाज नया ही चला था। मिश्रजी को इससे बड़ी चिढ़ थी। ऐसे लोगों पर आक्रमण करते हुए "तृष्यंताम" शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा—

15653

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"शिर ते पग लगि कारे कपरे शुद्ध आसुरी भेष तमाम।
भाषा औरौ मधुर आसुरी किट-पिट गिट-पिट ओ यू ड्याम॥
भोजन अधिक आसुरी जिनमें बूझि न परै हलाल हराम।
ऐसे असुरनती हिन्दुन सों होहु न आसुरी तृष्यन्ताम॥"

इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण हैं। सच पूछिए तो उनकी समस्त रचनाएँ ही ऐसी हैं, जिनमें किसी न किसी सामाजिक बुराई की ओर संकेत किया गया है, कभी-कभी उसे दूर करने का उपाय भी उन्होंने बतलाया है। संक्षेप में, जिस परिस्थिति में मिश्रजी का जन्म हुआ था, उनके विचार उस समय के से न थे। वे छुआछूत, खान-पान, जाति-पाँति के सभी दुर्गुणों का विरोध करते थे। वे भली-भाँति जानते थे कि एक ओर तो ये कुरीतियाँ हमारी उन्नति में बाधा डालती हैं और दूसरी ओर, इनकी आड़ में धर्म की बड़ी छीछालेदर की जाती है।

धार्मिक-सिद्धांत

मिश्रजी धार्मिक रूढ़ियों की भी परवाह न रखते थे। उनका जन्म एक सनातन हिंदू-धर्मावलंबी के घर हुआ था। इससे यह स्वाभाविक था कि उनकी प्रवृत्ति इस ओर झुक जाय। हुआ भी ऐसा ही। पर उन्हें किसी भी धर्म से घृणा न थी। वे मौजी जीव थे; कभी आर्य-समाज में जाते और कभी ब्रह्म-समाज में। उनके धार्मिक-सिद्धांत को प्रो० रमाकांत जी त्रिपाठी एम० ए० ने बड़े सुन्दर ढंग से इन शब्दों में समझाया है—

"मतमतांतरों के वितंडावाद को वे कोरी बकझक समझते थे। धर्म के नाम पर जो नित्य व्यर्थ के आडंबर रचे जाते हैं, उनके प्रति वे घृणा रखते थे। मतवादियों के लिए तो वे कहा करते थे—"वे अवश्य नरक जायँगे।" इस शीर्षक के लेख में वे कहते हैं—

Digitized by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'एक पुरुष ईश्वर की बड़ाई के कारण उसे अपना पिता मानता है, दूसरा उसके प्रेम के मारे उसे अपना पुत्र कहता है। इसमें दूसरे के बाप का क्या इजारा है।'

"वे संगठित रूप में सामुदायिक, धार्मिक सिद्धांतों के विरोधी हैं। वे यह नहीं पसंद करते कि किसी धार्मिक संस्था के द्वारा समस्त समाज को एक ही प्रकार के धार्मिक-सिद्धांत ग्रहण करने के लिए बाधित किया जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक प्रवृत्ति के तद्रूप अपना धर्म ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि वास्तव में, प्रत्येक व्यक्ति की भावनाएँ अपने-अपने सांसारिक अनुभवों के हिसाब से बिलकुल अलग होती हैं और जिन प्रवृत्तियों से उसका जीवन प्रभावित हो, वही उसका धर्म है।"

"भिन्न-भिन्न मतावलंबियों के अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की तथा दूसरों को हेय समझने की, जो आदत होती है उस पर मिश्रजी बड़ी मज़ेदार टीका करके मतांतरमात्र को अनावश्यक सिद्ध करते हैं—

'यदि वेद, बाइबिल और कुरानादि की एक प्रति अग्नि तथा जल में डाल दी जाय, तो जलने अथवा गलने से कोई न बचेगी। फिर एक मत वाला किस शेखी पर अपने को अच्छा और दूसरे को बुरा समझता है।'

एवं, 'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां' के वे मानने वाले थे।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि प्रतापनारायणजी आर्य-समाज के वास्तविक महत्व को खूब समझ गये थे और आज-कल लोग जिस श्रद्धा पूर्ण दृष्टि से उसके कार्य को देखते हैं, उसको उन्होंने इतने समय पूर्व ही देख लिया था। उनकी सी व्यापक दृष्टि उस 'रिंद' (मस्त) के लिए बिलबुल स्वाभाविक थी जो धर्म को "मकड़ी का जाला" कहता था और जो ईश्वर-प्रार्थना करते समय यह मंत्र जपता था—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'गमय दूरे शुष्क ज्ञानं
कुरुत प्रेम-प्रमाद-दानम्'

संसार के बड़े-बड़े सन्तों तथा भक्तों ने मस्ती में रंगे हुए जिस तल्लीनता अथवा आनन्दातिरेक का अनुभव करने के लिए शुष्क तत्त्वज्ञान का तिरस्कार किया है, ठीक उसी 'रिंदी' का उपदेश मिश्रजी ने अपने लेखों में दिया है।

'दिल और दिमाग़' ये ही समस्त सांसारिक ज्ञान के प्राप्त करने के दो उपकरण हैं। किसी को दिमाग़ की विवेचना शक्ति ही पर अधिक भरोसा रहता है, जैसे तत्त्वज्ञानी लोग। इसके प्रतिकूल, जो स्वभावतः मस्त तबियत के होते हैं, उन्हें कोरी दार्शनिक क्रीड़ा में मज़ा नहीं आता। वे अपनी सहृदयता की मात्रा बढ़ाते हुए उसी के द्वारा सांसारिक जीवन को आनन्दमय बनाने में निरन्तर लीन रहते हैं। ऐसे ही आनन्दी जीवों के हाथ से प्रत्येक युग में सर्वोत्कृष्ट साहित्य तथा कला का जन्म होता है और उन्हीं के प्रभाव से विश्व की जीवन धारा प्रवाहित रहती है। रूखे दिमाग़ी ज्ञान का उपार्जन करने में अपनी सारी शक्तियाँ केन्द्रित करने वालों की अन्त में उपेक्षा की जाती है, क्योंकि ऐसे नीरस-ज्ञान से मानव-हृदय को कभी सच्ची शान्ति नहीं मिलती।

'सोने का डंडा और पौंड़ा' शीर्षक लेख में मिश्रजी ने इसी तथ्य का मार्मिक विवेचन किया है। 'सोने का डंडा' शुष्क ज्ञान का द्योतक है जो देखने में बड़ा मनमोहक होता है, किन्तु जिससे किसी की आत्मा को वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती। पौंड़े से अभिप्राय है हार्दिक रसीलापन।❀

❀ इस सम्बन्ध में Tennyson की प्रसिद्ध Palace of Art पढ़ने लायक है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

महाकवि सूरदास ने अपने 'भ्रमरगीत' में उद्धव और गोपियों में जो ज्ञान और भक्ति विषयक बातचीत कराई है, उसका भी सारांश यही है।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में किसी न किसी समय किसी न किसी रूप में ऐसी मानसिक अवस्था का अवश्य अनुभव करता है, जिसमें उसे ज्ञान और भक्ति के प्रतिद्वन्दी भावों का पारस्परिक संघर्ष होता प्रतीत होता है। जिनमें अधिक मनोबल होता है, वे शीघ्र इस द्वन्द-युद्ध का निबटारा कर लेते हैं, पर निर्णय हमेशा भक्ति अथवा हार्दिक प्रवृत्तियों के पक्ष में होता है। संत तथा रिंद अन्य साधारण लोगों की अपेक्षा इस मस्ती अथवा तल्लीनता पर अटल रहते हैं और सांसरिक विषयों की ओर उनकी समदृष्टि रहती है। इस श्रेणी में बड़े मसखरे लोग, कविगण तथा अन्य कलाकोविद सम्मिलित होने चाहिए। इसी मानसिक स्थिरता अथवा औदार्य को प्रतापनारायणजी अपने भावपूर्ण शब्दों में यों प्रकट करते हैं—

"जहाँ तक सहृदयता से विचार किजिएगा, वहाँ तक यही सिद्ध होगा कि प्रेम के बिना वेद झगड़े की जड़, धर्म बे सिर-पैर के काम, स्वर्ग शेखचिल्ली का महल, मुक्ति प्रेत की बहिन है। ईश्वर का तो पता लगाना ही कठिन है।"

हद हो गई रिंदी की! दुनिया के किसी तजुर्बे को और धम के किसी तत्व को तौलने की कितनी अच्छी कसौटी है! 'एकै आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय' वाली बात है।

इसी मस्ती की तरंग में आकर मिश्रजी ने 'मदिरा की बहुत कुछ तारीफ कर डाली है। कुछ लोगों को केवल इसी सूफियाना ढङ्ग से की गई प्रशंसा के कारण यह भ्रांति हो गई है कि प्रताप नारायणजी मदिरा-सेवक थे। यह धारणा ऐसी ही निर्मूल है,

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

जैसी कि चोरों का दृश्य वर्णन करने वाले किसी कहानी-लेखक अथवा नाटककार को चोर समझने की।‡

देश-प्रेम

मिश्रजी के समय में राष्ट्रीय आन्दोलन होने लगे थे। कुछ समय पश्चात् काँग्रेस का जन्म हुआ। उसके जन्मदाता ह्यूम साहब को वे बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। काँग्रेस के उद्देश्यों से उनकी सच्ची सहानुभूति थी और देश की परिस्थिति को देखते हुए वे ऐसी संस्था को बहुत ही आवश्यक समझते थे। यहाँ तक कि काँग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में सम्मिलित होने का वे भरसक प्रयत्न करते थे। मद्रास और इलाहाबाद में होने वाले काँग्रेस के अधिवेशनों में वे कानपुर के प्रतिनिधि की हैसियत से गये भी थे।

देश की वस्तुओं का हम लोग आदर नहीं करते, मिश्रजी इसी को देश की अवनति का प्रधान कारण समझते थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

"देशी कारीगरी को देश ही वाले नहीं पूछते। विशेषतः जो छाती ठोक-ठोक कर ताली बजवा-बजवा कर, कागज के तख्ते रँग-रँग कर देशहित के गीत गाते फिरते हैं, वह और भी देशी वस्तु का व्यापार करना अपनी शान से बईद समझते हैं।" यही भाव इन पंक्तियों में भी झलकता है—

"देशी वस्तु विहाय विदेशिन सों सर्वस्व ठगाते।
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख जिन कर यह ढँग दीठा;
घर की खाँड़ खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा॥"

---

‡प्रताप पीयूष। पृ० ११-१७

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"द" शीर्षक एक लेख उन्होंने लिखा था। उसमें बड़े मार्मिक ढंग से उन्होंने सुझाया है—

"जिस भारत-लक्ष्मी को मुसलमान सात सौ वर्ष में अनेक उत्पात कर के भी न ले सके, उसे उन्होंने (अँगरेज बहादुरों ने) सौ वर्ष में ही धीरे-धीरे ऐसे मजे के साथ उड़ा लिया कि हँसते-खेलते विलायत जा पहुँची।"

इस भारत-लक्ष्मी को वे विदेश में जाने से रोकना चाहते थे। इसका उपाय उन्होंने यही बतलाया कि हम सभी देशी-वस्तुओं का आदर करें। इस बात पर अमल करने के लिए वे प्रायः कानपुर की जनता को उत्तेजित और उत्साहित भी किया करते थे। देश को परतन्त्र देख कर उन्हें बड़ा दुःख होता था। "होली है अथवा होरी है" शीर्षक कविता में उनका हृदय देखिए—

सब के मुख सुनियत घर बाहर होली है भइ होली है॥
याहू अवसर देश दशा की सुख-दुख देति अतोली है।
सब प्रकार सों देखि दीनता लगति हिए जनु गोली है॥
दिन-दिन निरबल, निरधन, निरबस होति प्रजा अति भोली है।
हाय कौन सुख देखि समुझिये अजहु हमारे होली है॥

हिन्दी-प्रेम

राष्ट्रीय आन्दोलन से ही हिन्दी-भाषा और देव नागरी लिपि के प्रचार के आन्दोलन का जन्म हुआ। मिश्रजी हिन्दी के बड़े हिमायती थे। यद्यपि वे स्वयं कभी-कभी उर्दू में कविता किया करते थे, तथापि उर्दू को वे बहुत आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे और "उर्दू बीबी की पूँजी" शीर्षक लेख में तो उन्होंने यहाँ तक लिख मारा है कि 'उर्दू की वास्तविक पूँजी यदि विचार से देखा जाय तो 'आशिक', 'माशूक', 'बाग', 'बुलबुल', 'सैयाद', 'शराब' 'साक़ी' बस इतनी ही बातें हैं, जिन्हें उलट-फेर के वर्णन किया

Digitization by American Academy of Indic Studies (AAIS)(USA)

करो, आप बड़े अच्छे उर्दू-दाँ हो जायँगे। हमारे एक मित्र का वाक्य कितना सच्चा है कि और सब विद्या हैं, यह अविद्या है। जन्म भर तक पढ़ा कीजिए, तेली के बैल की तरह घूमते रहोगे।"

हमें आश्चर्य है कि उन्होंने ऐसा लिखा कैसे, जब वे स्वयं उर्दू में अच्छी-अच्छी गजलें और शेरें लिखा करते थे। शायद इसका कारण यह हो कि वे मौजी जीव थे, कवि थे।

पर उन्हें हिन्दी से प्रगाढ़ प्रेम था। एक बार 'फतेहगढ़ पञ्च' ने उनके हिन्दी प्रेम पर आक्षेप करते हुए हिन्दी में ही दोष दिखाये इस पर मिश्रजी बहुत ही नाराज हुए और उन्होंने 'पञ्च' की, दलीलों का बड़ी योग्यता से खंडन किया। स्वभाषा और स्वदेश की तरङ्ग में उन्होंने जो कविता लिखी थी, उसका एक नमूना इस प्रकार है—

"चहहु जो साँचहु निज कल्यान, तो सब मिल भारत-सन्तान,
जपहु निरन्तर एक जबान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥१॥
धनि है वह धन धनि वे प्रान, जो इन हेतु होंय कुरबान,
यही तीन सुख सुगति निधान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥२॥
सरबसु जाय दीजिए जान, सब कुछ सहिए बनि पाखान,
पै गहि रहिए प्रेम प्रन ठान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥३॥
तबहिं सुधरि है जनम निदान, तबहिं भला करिहैं भगवान,
जब रहि है निसदिन यह ध्यान हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥४॥
जिन्हें नहीं निजता को ज्ञान, वे जन जीवत मृतक समान,
याते गहु यह मंत्र महान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥५॥

गो-रक्षा

गोरक्षा के लिए जो आन्दोलन उनके समय में हो रहा था, उसके प्रति उनकी हार्दिक प्रेरणा थी। अन्य सज्जन भी उन्हीं की भाँति गो-सेवा करना चाहते थे, गोशाला खोलने के लिए अनेक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सभाएँ करते थे। पर यह सब सेवा-भाव केवल दिखाने के लिए ही रहता था। इनके दिल में सच्ची लगन न थी; बहुतेरे समाज और धर्म-सुधारकों की तरह इसमें भी उनका स्वार्थ था। नतीजा यह होता कि गोशाले ठंडे हो जाते और गो-हत्या बढ़ने लगती। इसका कारण सुझाते हुए मिश्रजी ने ऐसे सुधारकों को फटकारने के लिए लिखा—

"गऊ रच्छिनी कठिन काम है, नाहीं खेल लरिकवन क्यार।
दिन भर बारन के ऐछैया, नहिं करतूत दिखावन हार॥"

समस्त हिन्दू जाति को उसका कर्तव्य सुझाते हुए उन्होंने गो-रक्षा-विषयक एक कविता लिखी। यह आल्हा छंद में है। इसका उदाहरण देखिये—

"गैया माता तुमका सुमिरौं, कीरति सबसे बड़ी तुम्हारि;
करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन वैतरनी देउ तारि।
तुम्हरे दूध-दही की महिमाँ, जानैं देव पितर सब कोय;
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगै पवित्तर होय॥१॥
जिनके लरिका खेती करिकै, पालैं मनइन के परिवार;
ऐसी गाइन की रच्छा माँ जो कुछु जतन करौ सो थ्वार।
घास के बदले दूध पियावैं, मरिकै देंय हाड़ और चाम;
धनि वह तन मन धन जो आवै, ऐसी जगदम्बा के काम॥२॥
आल्हाखंड की पोथी लैके, द्याखौ तनुक लिखा कस आय;
जहाँ रोसैयाँ है ऊदन कै, भूखा मुगुल पछारै गाय।
को अस हिन्दू ते पैदा है, जो अस हाल देखि एक साथ;
रकत के आँसुन रोय न उठि है, माथे पटकि दुहत्था हाथ॥३॥

—कानपुर महिमा।

एक बार एक स्वामीजी के साथ वे कन्नौज गये थे। वहाँ गो-रक्षा पर इन्होंने एक व्याख्यान दिया था। उस समय इन्होंने एक लावनी पढ़ी थी। इसका आरम्भ यों है—

Sri Pratap Singh Library

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

"बा–बा कहि तृण दाबि दांत सों, दुखित पुकारत गाई है।"

कहते हैं, जिस समय भरी सभा में यह लावनी गाई गई, उस समय सब की आँख से आँसू बहने लगे। मुसलमान भी पिघल गये; कई कसाइयों ने तो उसी समय से गो-वध न करने की कसम खा ली। अपने लिए तो मिश्रजी ने यहाँ तक लिखा है—

"जब सुधि आवै मोहिं गैयन की, नैनन बहै रकत की धार"

"ब्राह्मण"

अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए पं० प्रताप-नारायण मिश्र को "ब्राह्मण" नाम का पत्र निकालने की आवश्यकता पड़ी। यों उस समय बाबू हरिश्चन्द्र की "कवि-वचन-सुधा" नाम की पत्रिका भी अच्छी निकल रही थी, पर उससे मिश्रजी का मतलब पूरा होने की सम्भावना न थी। इसका प्रधान कारण उनके और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उद्देश्यों में अन्तर का होना था। एक दूसरा कारण यह भी था कि "कवि-वचन-सुधा" में प्रायः कविता ही अधिकतर छपा करती थीं।

"ब्राह्मण" के पहले अङ्क में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने पत्र के उद्देश्य लिखे थे। वह लेख छोटा ही है; पर उसकी मुख्य बातें हम यहाँ पर देते हैं। उन्होंने लिखा है—

"हम गुणी हैं या औगुणी यह तो आप लोग कुछ दिन में जान ही लेंगे; पर यह जान रखिये कि भारतवासियों के लिये क्या लौकिक, क्या पारलौकिक मार्ग का एक मात्र अगुआ हम और हमारे थोड़े से समाचार-पत्र भाई ही बन सकते हैं। कानपुर इतना बड़ा नगर अनेक सहस्रावधि मनुष्यों की बस्ती, पर नागरी-पत्र जो हिन्दी रसिकों का एक मात्र मन बहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षक और सभ्यता-दर्शक, अत्युच्च ध्वजा यहाँ एक भी नहीं। भला यह हमसे कब देखी जाती है?

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"·····। अन्तःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा। हम निरे मत-मतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा हो, दूसरे की निन्दा हो। वरंच वह उपदेश करेंगे जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य, सब देश-काल में साथ हों, जो किसी के भी विरुद्ध न हों। वह चाल-ढाल व्यवहार बतावेंगे, जिनसे धन-बल, मान-प्रतिष्ठा में कोई भी बाधा न हो। कभी राज-सम्बन्धी, कभी व्यापार सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे, कभी-कभी गद्य-पद्य मय नाटक से भी रिझावेंगे। इधर-उधर के समाचार तो सदा देवेंगे ही।·····। हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा। जिस तरह सब जहान में कुछ हैं, हम भी अपने गुमान में कुछ हैं।"

इस अवतरण से मिश्रजी का उद्देश्य प्रकट हो जाता है। "ब्राह्मण" में पहले सामाजिक लेख ही अधिकतर प्रकाशित होते थे। जन-साधारण को समझाने और रिझाने के लिए मिश्रजी अपनी भाषा सरल और साधारण रखते थे। इसमें हास्य की मात्रा कुछ अधिक होती थी। इस समय के लेखों में 'कलिकोष', 'किस पर्व में किस की बनि आती है', 'किस पर्व में किस पर आफत आती है', 'मतवादी अवश्य नरक जायँगे', 'होली है', 'ककराष्टक', 'नारी', 'देव मन्दिरों के प्रति हमारा कर्त्तव्य' आदि प्रसिद्ध हैं।

आगे चल कर उन्होंने "ब्राह्मण" की रीति-नीति में कुछ परिवर्तन करना चाहा। "हमारी आवश्यकता" शीर्षक लेख में एक बार उन्होंने लिखा—

"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने बहुत से पढ़ लिये। यद्यपि इनमें भी बहुत सी समयोपयोगी शिक्षा रहती हैं; पर वाग्-जाल में फँसी हुई ढूँढ़ निकालने योग्य। अतः अब हमारा विचार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है कि कभी-कभी ऐसी बातें भी लिखा करें, जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हैं, तथा हास्यपूर्ण न होके सीधी सादी-भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समझ कर छोड़ न दिया करें तथा केवल पढ़ ही न डाला करें, वरंच उनके लिए तन से, धन से, कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें।"

इस उद्धरण से प्रकट होता है कि हिन्दू-जनता के हृदय में हिन्दी के लिए कुछ प्रेम अवश्य उत्पन्न हो चुका था और मिश्रजी उसका संस्कार करना चाहते थे। उनका उद्देश्य अब यह नहीं था कि अपने पाठकों को केवल हँसाने और रिझाने की ही चेष्टा की जाय; वरन् वे अब उनका नैतिक और साहित्यिक उत्थान करना चाहते थे।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए। "ब्राह्मण" में कुछ साहित्यिक निबन्ध तो प्रकाशित होने लगे; परन्तु उनकी भाषा में विशेष गंभीरता न आ सकी। इस समय भी उनकी भाषा हास्य और व्यंग्य से पूर्ण होती थी। उनके साहित्यिक-निबन्धों में 'आयु', 'युवावस्था', 'भौं', 'धोखा', 'बातचीत', आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

इतना होने पर भी जनता ने "ब्राह्मण" का विशेष आदर न किया; यहाँ तक कि उसके सौ ग्राहक भी न रहे और मिश्रजी को लगभग साढ़े सात सौ की हानि उठानी पड़ी। अन्त में उसके बन्द होने की भी नौबत आ गई। अन्तिम अङ्क में "ब्राह्मण की अन्तिम विदा" शीर्षक एक लेख लिखा। उसमें मिश्रजी लिखते हैं—

'दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं॥'

Digitized by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'परम गूढ़ गुण, रूप, स्वभावादि सम्पन्न प्रेमदेव के पद-पथ को बारम्बार नमस्कार है कि अनेकानेक विघ्नों की उपस्थिति में भी उनकी दया से ब्राह्मण ने सात वर्ष तक संसार की सैर कर ली, नहीं तो कानपूर तो वह नगर है जहाँ बड़े-बड़े लोग बड़ों बड़ों की सहायता के आछत भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छः महीने भी नहीं चला सके और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृतकार्यत्व लाभ कर सकेगा क्योंकि यहाँ के हिन्दू समुदाय में अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रक्खा ही नहीं। फिर हम क्यों कर मान लें कि यहाँ हिन्दी और उसके भक्तजन कभी सहारा पावेंगे ? ऐसे स्थान पर जन्म लेके और खुशामदी तथा हिकमती "ब्राह्मण" देवता इतने दिन तक बने रहे, सो भी एक स्वेच्छाचारी के द्वारा संचालित होके, इसे प्रेम-देव की आश्चर्य लीला के सिवा क्या कहा जा सकता है।'

इस सूचना के लगभग पाँच महीने पहले उन्होंने "ब्राह्मण" में "तृप्यन्ताम" शीर्षक एक बहुत लम्बी-चौड़ी कविता लिखी थी। उसके अन्त में ही उन्होंने "ब्राह्मण" को बन्द करने का विचार जनता के सामने रख दिया था। उन्हें आशा थी कि सम्भव है, हिन्दी-प्रेमी और कानपुर के सज्जन उसके प्रति कर्त्तव्य पहचान सकें; पर हिन्दी के दुर्भाग्य से ऐसा न हुआ। लोगों ने उनके कथन को एक कान से सुना और दूसरे से निकाल दिया। "ब्राह्मण" की यह सूचना इस प्रकार है—

'जिन्हें ब्राह्मण का जीवन न रुचता हो, वे पाँच महीने और राम राम कर काट दें, फिर देख लेंगे कि हर महीने ऊटपटांग लेख और हर साल सोलह आने का तकाजा समाप्त हो गया। क्योंकि जब हम सात महीने से देख रहे हैं कि सहायता के नाते बाजे-बाजे बड़े-बड़े लखपतियों से असली दाम भी नहीं मिलते, जो कुछ सहारा देते हैं वह केवल मुख से। जिनसे कुछ आसरा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
करो वे और कुछ ले के रहते हैं। जो सचमुच सहायक हैं, वे गिनती में दस भी नहीं। इसी से कई एक उत्तमोत्तम पत्र बन्द हो गये कई एक आज हैं, तो कल नहीं, कल हैं तो परसों नहीं। कई एक ज्यों-त्यों चले जाते हैं, तो केवल चलाने वाले के माथे। पर अपने राम में अब सामर्थ्य नहीं रही। बरसों से झेलते-झेलते हिम्मत हार गई।'

इस प्रकार "ब्राह्मण" ने जन्म लिया, हिन्दी की सेवा की और अन्त में समाप्त होगया। यह पत्र मासिक था। इसका पहला अङ्क १५ मार्च, १८८३ में निकला था। इस समय इसमें १२ पृष्ठ थे। सन् १८८७ में कुछ दिनों के लिए यह बन्द भी हुआ था। "ब्राह्मण की अन्तिम विदा" शीर्षक लेख कदाचित् इसी समय प्रकाशित हुआ था। सन् १८९४ में पं० प्रतापनारायण मिश्र की मृत्यु के उपरान्त, बाबू रामदीन सिंह ने इसे फिर निकालने का प्रयत्न किया; पर वे सफल न हुए। बाबू साहब बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस के मालिक थे। मिश्रजी पर इनकी विशेष कृपा थी। शायद इसी से पं० प्रतापनारायण ने अपनी कुछ पुस्तकों का अधिकार भी उन्हीं को दे दिया था। "ब्राह्मण" ने हिन्दी-साहित्य की क्या सेवा की, इसका पता हमें मिश्रजी के इस कथन से लगता है—

'यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्तव्य-पालन में योग्य था व अयोग्य, यह कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है। न्यायशील सहृदय लोग अपना विचार आप प्रकट कर चुके हैं और करेंगे; पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी-पत्रों की गणना में एक संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिलता रहता था।'

मिश्रजी के 'ब्राह्मण' ने जो हिन्दी-भाषा और साहित्य का काम शुरू किया। वही, आगे चलकर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सरस्वती ने पूरा किया। दोनों अभिन्न हैं। हम तो यही कहेंगे कि 'ब्राह्मण' के ही कारण पं० प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित्र एक साहित्य-सेवी की हैसियत से हमारे सामने आ सका। सम्भव है, 'ब्राह्मण' के न होने पर मिश्रजी इतने प्रसिद्ध न होते।

ग्रन्थ

मिश्रजी की, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, संस्कृत, बँगला अँगरेजी आदि में भी अच्छी गति थी, पर फारसी, उर्दू, संस्कृत और अँगरेजी का ज्ञान इन्हें इतना न था, जितना बँगला का। ऐसा जान पड़ता है कि बँगला से इन्हें कुछ विशेष प्रेम था। सम्भव है, इसका कारण यह हो कि इनके समकालीन साहित्य-सेवी भी—भारतेन्दु आदि—बँगला-साहित्य की ओर आकृष्ट हो चुके थे। बँगला-साहित्य से प्रभावित होकर इन्होंने कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उनकी अनुवादित पुस्तकें ये हैं—

१ राजसिंह
२ इन्दिरा
३ राधारानी
४ युगलांगुरीय
५ चरिताष्टक
६ पञ्चामृत
७ नीतिरत्नावली
८ कथामाला
९ संगीत शाकुन्तल
१० वर्ण परिचय (तृतीय भाग)
११ सेन-वंश (इतिहास)
१२ सूबे बँगाल का भूगोल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इनमें से पहली चार पुस्तकें बँगला के सुप्रसिद्ध लेखक बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद हैं। पाँचवीं पुस्तक में बँगला के ८ महापुरुषों के जीवन-चरित्र हैं। आठवीं और दसवीं पुस्तक ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर की पुस्तकों के अनुवाद हैं। शेष पुस्तकों का परिचय नाम से ही मिल जाता है। इनमें संगीत शाकुन्तल नाम की पुस्तक बड़ी अच्छी चीज है।

इनके अतिरिक्त मिश्रजी की स्वयं लिखी हुई अनेक पुस्तकें हैं। उनके नाम ये हैं—

नाटक

१ कलिप्रभाव
२ हठी हमीर
३ गो-संकट

रूपक—

१ कलि-कौतुक
२ भारत-दुर्दशा

काव्य—

१ मन की लहर
२ शृंगार-विलास
३ लोकोक्ति-शतक
४ तृष्यन्ताम्
५ ब्राडला स्वागत
६ मानस विनोद

संग्रह—

१ प्रताप-संग्रह
२ रसखान-शतक

आल्हा—

१ दंगल-खंड

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रहसन—

१ जुआरी-खुआरी-प्रहसन

साधारण तौर पर इन पुस्तकों के बारे में इतना कहा जा सकता है कि साहित्यिक दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं। इनके नाटक और रूपक साधारण कोटि के ही हैं। हाँ, भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाटकों में जो राष्ट्रीयता और सामाजिक-सुधार की झलक पाई जाती है और नाटक साहित्य को समयोपयोगी बनाने के लिए जिस पद्धति का उन्होंने प्रचार किया, मिश्रजी में उसका अनुकरण और समावेश सन्निहित है। कविताओं में, तृष्यन्ताम् उपदेशात्मक है। उसमें देश की दशा का चित्र चित्रित किया गया है। लोकोक्ति-शतक में एक-एक कहावत पर एक-एक पद्य है। इसमें ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि प्रत्येक पद्य का अंतिम चरण स्वयं कोई कहावत है। दोनों संग्रह भी साधारण ही हैं।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त तीन पुस्तकें—वर्ण-माला, शिशु विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा—भी उन्हीं की बताई जाती हैं; पर वे शायद प्राप्य नहीं हैं; कम से कम मेरे देखने में नहीं आईं। इसलिए निश्चित रूप से यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे अनुवादित हैं, या स्वयं इन्हीं की लिखी हुई। हाँ, नाम देखने से अनुमान किया जा सकता है कि वे अनुवादित ही हो सकती हैं, क्योंकि मिश्रजी ने प्रायः साहित्य और समाज से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें ही लिखी हैं।

कविता

पंडित प्रतापनारायण मिश्र समाज का सुधार करना चाहते थे; देश के शुभचिन्तक थे और साथ ही, मौजी जीव भी। इसी से तीन प्रकार की कविता उन्होंने की है :—

१—समाज-सम्बन्धी

२—देश-भक्ति विषयक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

३—सामयिक और स्वांतः सुखाय लिखी हुई।

इस नोट में हम उनकी तीसरे प्रकार की कविता का अध्ययन करेंगे और उसके गुण-दोषों का सिंहावलोकन भी।

मिश्रजी की सामायिक कविता अच्छी है और उसका मान भी बहुत होता था। "ब्राडला स्वागत" शीर्षक कविता का जो ब्रैडला महाशय के आगमन पर स्वागत के लिए लिखी गई थी, बड़ा आदर हुआ था। यहाँ तक कि इङ्गलिस्तान के कुछ पत्रों में भी उसकी आलोचना की गई थी। युवराज का भारत में आना, महारानी विक्टोरिया की जुबली, आदि अनेक बातें ऐसी थीं, जिन्होंने जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था, फिर मिश्रजी तो एक पत्र के सम्पादक थे। उनके लिए "युवराज स्वागत" "विक्टोरिया की जुबली" आदि कविताएँ लिखना स्वाभाविक ही था। यहाँ हम उनकी इस प्रकार की कविता के दो छोटे-छोटे उदाहरण पाठकों के मनोरजंन के लिए देते हैं—

ब्राडला-स्वागत

"स्वागत श्रीयुत ब्राडला, प्रेम-प्रतिष्ठा पात्र;
पलक पाँवड़े करि रहे, तव हित देशी मात्र।"

इन्हीं ब्रैडला साहब की मृत्यु पर भी उन्होंने एक कविता लिखी थी। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

ब्राडला की मृत्यु पर

"हाय हमारे दुख कहँ निज दुख समझन हारे।
प्यारे मिस्टर चार्ल्स ब्रैडला कहाँ सिधारे॥
हाय ब्रिटिश वाटिका कल्पतरु जग हितकारी।
कहँ ढूढैं दुखिया भारत सुत छाँह तिहारी॥
जाके इक-इक सु-गुन सुमिरि फाटति है छाती।
हाय ब्रैडला हाय हिन्द के सत्य संघाती॥

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

याते रहि-रहि कहि-कहि आवत उर ते एही।
हाय ब्रैडला हाय सत्य के सहज सनेही ॥"

इन दोनों कविताओं को स्थानाभाव के कारण हमने छोटा करके प्रकाशित किया है। फिर भी इन कविताओं की सुन्दरता कम नहीं होती। इसी प्रकार की उनकी अन्य सामयिक रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं। एक कविता उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु पर लिखी थी। वह भी देखिए—

"करुणानिधि कहवाय हाय हरि आज कहा यह कीन्हों।
देश उधार जतन तत्पर वर पुरुष-रतन हरि लीन्हों॥
जिन निज सरबसु केवल हम हित तजत विलम्ब न लाई।
तिनसों हाय हमें बिधुरावत तुम कहँ दया न आई॥
परे अचेत मोह निद्रा में जे नित सबहिं जगावैं।
कछु कछु आँख खुलै पर उनको हाय कहाँ हम पावैं॥
यूरुप अमरीका लगि हा! हा! को अब नाम करैगो।
श्रुति कलङ्क गो दुख द्विज दुर्गुन को अब हा न हरैगो॥
गारी खाय अनादर सहिकै विद्या धर्म प्रचारै।
ऐसो कोउ न दिखाय हाय स्वामी तो स्वर्ग सिधारै॥"

कविता वही सुन्दर समझी जाती है, जिसमें हम लेखक का हृदय देख सकें। ऐसी ही कविता पाठकों पर प्रभाव डालती है। इस कविता को पढ़ कर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति है, जिसके मुँह से "हाय" न निकल जाय। साथ ही, परिस्थिति, भारतवासियों की मोहनिद्रा और स्वामीजी के कार्य-कलाप का किस सुन्दर ढंग से वर्णन किया है कि देखते ही बनता है।

दूसरे प्रकार की—स्वांतःसुखाय लिखी हुई—कविताएँ इससे भी सजीव हैं। कवि जब किसी कारण से प्रसन्न होता है,

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

तब वह स्वयं कुछ गुनगुनाने लगता है। उसकी यही रचना, प्रेरणा विशेष से रची हुई कविता से प्रायः अच्छी हुआ करती है। यही बात मिश्रजी की स्वांतःसुखाय लिखी हुई कविता के विषय में भी, किसी सीमा तक सत्य है। "बुढ़ापा", "मन की लहर" आदि उनकी कविताएँ ऐसी ही हैं। "बुढ़ापा" शीर्षक कविता देखिए—

"हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं
कहाँ जायँ औ कैस करन।
छिन भरि चटक छिन्नै माँ मद्धिम
जस बुझात खन होय दिया,
तैसे निखवख देखि परत है
हमरी अक्किल के लच्छन ॥१॥
अस कुछु उतरि जाति है जीते
बाजी वेरियाँ बाजी बात,
कैसेउ सुधि ही नाहीं आवति
मूड़इ काहे न दै मारन।
कहा चहौं कुछु निकसत कुछु है
जीभ राँड का है यहु हालु,
कोऊ याकौ बात न समझै
चाहै बीसन दाँय कहन ॥२॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलि गै
बिन दाँतन मुँहुँ अस पोपलान,
दढ़ही पर बहि-बहि आवति है
कबौं तमाखू जो फाँकन।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वार पाकि गे रीरौ झुकि गे
मूड़ौ सासुर हालन लाग,
हाथ-पाँय कुछु रहे न आपनि
कहिके आगे दुखु र्‍वावन ॥३॥
यही लकुटिया के बूते अब
जस तस डोलित-डालित है,
जेहिको लैके सब कामन माँ
सदा खखारत फिरत रहन।
जियत रहैं महराज सदा जो
हम ऐस्यन का पालति हैं;
नाहीं तो अब को धौं पूछै
केहिके कौने काम के हन ॥४॥"

इस कविता में एक वृद्ध आदमी अपनी बुढ़ापे की दशा का वर्णन कर रहा है; वर्णन क्या, सच्चा और सजीव चित्र है। कुछ लोग भाषा को लेकर झगड़ा उठाते हैं कि अमुक भाषा में सरस, और मधुर कविता हो ही नहीं सकती। ऐसे लोगों को यह कविता अवश्य देखनी चाहिए। इसकी भाषा गँवारी—महा-गँवारी—है; पर कविता कितनी सरस और कहने का ढङ्ग कितना स्वाभाविक है। मेरा तो अनुमान है कि यदि कोई बूढ़ा गँवार आज भी अपनी दशा का वर्णन करे, तो उसके मुँह से यही शब्द निकलेंगे।

मिश्रजी ने शृङ्गार रस की भी कुछ कविताएँ की हैं। उनकी इस प्रकार की कविता भी सरस है। कवित्त और सवैयों का अधिकतर प्रयोग इनके लिए किया गया गया है। ऐसी रचनाएँ प्रायः अधिकतर समस्या पूर्ति के लिए की जाती थीं। बात यह थी कि कानपुर के कुछ रसिक कवियों ने मिलकर "रसिक-समाज" नाम की एक संस्था की स्थापना की थी। यह बात

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
लगभग १८९७ की है। पंडित प्रतापनारायण भी इस संस्था के सदस्य थे। मौजी तो थे ही; उनकी सलाह से 'रसिक वाटिका' नाम की एक पत्रिका भी प्रकाशित कर दी गई। मिश्रजी की जो कविताएँ इसमें छपीं, वे प्रायः सभी शृङ्गार रस की हैं। उनके कुछ छन्द इस प्रकार हैं—

"कल पावैं न प्राण तुम्हैं बिन देखे इन्हें अधिकौं कलपाइए ना।
परताप नरायन जू के निहोरे प्रीति प्रथम विसराइए ना॥
अहो प्यारे बिचारे दुखैरन पै इतनी निठुराई जताइए ना।
करि एकहि गाँव में वास हहा सुख देखिवे को तरसाइए ना॥१॥"

"बन बैठी है मान की मूरति सी,
मुख खोलत बोलै न "नाहिं" न "हाँ"।
तुमहीं मनुहारि कै हारि परे,
सखियान की कौन चलाई कहाँ॥
बरखा है प्रताप जू धीर धरौ
अबलौं मन को समुझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलेगी कछू
पपिहा जब पूछि है पीव कहाँ॥२॥"

"बूड़ि मरै न समुद्र में हाय
ये नाहक हाथ निछीछे डुबावैं।
का तजि लाज गराज किए
मुख कारो लिए इत ही उत धावैं॥
नीरि दुखारिन पै बजमारे
वृथा बँदियान के बान चलावैं।
बीर हैं तौ बलिबीरहि जायकै,
बीर बली धुरवा धमकावें॥३॥"

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"आसवँ छाकि खुली छति पै,
खुली खेलति जोबन की मतवारी;
गात-ही गात अदा-ही-अदा,
कढ़ै बात-ही-बात सुधा सुखकारी
रंग रचै रस-राग अलापि,
नचै परताप गरे भुज डारी;
ता छिन छावै अजीव मजा,
बजनी घुँघरू रजनी उजियारी ॥४॥"

"नैनन में बसै साँवरो रूप,
रहै मुख नाम सदा सुखदाई;
त्यों श्रुति में ब्रज—केलि—कथा,
परिपूरण प्रेम प्रताप बड़ाई।
कोऊ कछू कहै होय कहूँ कछू,
पै जिय में परवाह न लाई,
नेह निभै नँदनंदन सों नर-
देह धरै को यहै फल भाई ॥५॥"

"सिर चोटी गुँधावती फूलन सों
मेंहदी रचि हाथन-पाँवन में,
परताप त्यों चूनरी सूही सजी
मन-मोहनी हावन-भावन में,
निस—द्यौस बितावती पीतम के संग
झूनल और झुलावन में;
उनहीं को सुहावने लागत हैं
धुरवान की धावन सावन में ॥६॥"

यह कविताएँ सरस और सुन्दर हैं। इनमें प्रत्येक छन्द के नीचे की पंक्तियाँ समस्याएँ थीं, जिनकी पूर्ति इन छंदों में की गई हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पण्डित प्रताप नारायण उर्दू में कविता किया करते थे। उर्दू में उनका तखल्लुस "बरहमन" था। उनकी उर्दू की कविता भी अच्छी है। नमूना देखिए—

"वह बद ख़ू राह क्या जाने वफ़ा की।
अगर ग़फलत से बाज़ आया जफ़ा की॥ १॥
न मारी गाय गोचारन किया बन्द।
तलाफ़ी की जो ज़ालिम ने तो क्या की॥ २॥
मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने।
कहे देती है शोख़ी नक्शे पा की॥ ३॥
पुलिस ने और बदकारों को शह दी।
मरज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की॥ ४॥
जो काफ़िर कर गया मन्दिर में बिदअत।
वो जाता है दुहाई है खुदा की॥ ५॥
शबे क़त्ल आगरे के हिन्दुओं पर।
हक़ीक़त खुल गई रोज़े जजा की॥ ६॥
ख़बर हाकिम को दें इस फ़िक्र में हाय।
घटा की रात और हसरत बढ़ा की॥ ७॥
कहा अब हम मरे साहब कलक्टर।
कहा मैं क्या करूँ मरज़ी खुदा की॥ ८॥
ज़मीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब।
ख़बर ला दे कोई तहतुस्सरा की॥ ९॥
कोई पूछे तो हिन्दुस्तानियों से।
कि तुमने किस तवक्का पर वफ़ा की॥१०॥
उसे मोमिन न समझो ऐ बरहमन।
सताए जो कोई खिलकत खुदा की॥११॥"

यह कविता १५ दिसम्बर, १८८३ के 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थी। कहा जाता है कि इस ग़जल की पहली पंक्ति तो इनकी है;

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर दूसरी किसी और की। जिस समय यह कविता छपी थी, गोरक्षा का प्रश्न छिड़ा हुआ था। बहुत से लोगों ने गो-हत्या के पक्ष में लेख लिखे थे। मिश्रजी ने तो बहुत सी कविताएँ लिखी थीं। उनकी कुछ रचनाएँ संस्कृत में भी मिलती हैं। इसमें कहीं-कहीं पर कुछ दोष हैं और विशेष महत्व की भी यह नहीं है।

पंडित प्रतापनारायण ने कई ग्रन्थों का अनुवाद किया है। गद्य-ग्रन्थ तो इनमें कई हैं; पर पद्य में केवल शकुन्तला ही विशेष प्रसिद्ध है। यह अनुवाद कैसा है, इससे अपने पाठकों को परिचित कराने के लिए एक उदाहरण हम "सुकवि-संकीर्तन" से देते हैं। पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने शकुन्तला के विषय में लिखा है—

"पंडित प्रतापनारायण ने शकुन्तला का जो अनुवाद हिन्दी में किया है, वह अनुवाद नहीं कहा जा सकता; हाँ स्वतन्त्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है। मूल के भावों को इन्होंने अनुवाद में बहुत कुछ घटा-बढ़ा दिया है। इस बात को उन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है। ऐसा करने से अगर कहीं-कहीं मूल का मज़ा जाता रहा है, तो कहीं-कहीं अधिक भी हो गया है। हम यह नहीं कह सकते कि यह अनुवाद सब-कहीं अच्छा ही हुआ है; पर इसका अधिक अंश रोचक, रसवान और मनोहर है।"

चौथे अङ्क की बात है। कण्व-प्रवास से वापस आ गये हैं। उनकी आज्ञा से उनका शिष्य यह देखने के लिए कुटी से बाहर निकला है कि कितनी रात बाकी है। इधर-उधर देखने पर उसे मालूम हुआ कि प्रातःकाल हो गया। तब वह कहता है—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥१॥

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं विनन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥२॥

भावार्थ—

जिन औषधियों का सेवन बड़े-बड़े भयंकर रोगों का—नहीं, मृत्यु तक का—नाश कर सकता है उन्हीं का स्वामी, चन्द्रमा, एक तरफ, अस्त हो रहा है। दूसरी तरफ, जिसकी जंघाएँ (रानें) तक नहीं, ऐसे अनुरूप सारथी को रथ के आगे बिठला कर सूर्य उदित हो रहा है। इस प्रकार एक ही साथ, दो तेजस्वी पिंडों की संपदा और विपदा को दिखा कर, अपनी-अपनी अवस्था-विशेष में, मनुष्यों का मानो नियमन किया जा रहा है। अर्थात् सम्पत्ति और विपत्ति के समय किसी को भी हर्ष या विषाद करना उचित नहीं ॥१॥

जो कुमुदनी अपनी प्रफुल्लिता अवस्था में परम शोभामयी थी, वही चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर, मेरी आँखों को अच्छी नहीं लगती। अब उसमें उसकी पहली शोभा नहीं रही। उस शोभा का अब स्मरण मात्र शेष है; वह दिखाई नहीं देती। सच है, अपने प्रियतम के प्रवासी होने के कारण उत्पन्न हुआ दुःख अबलाओं को अत्यन्त दुःसह होता है ॥२॥

पं० प्रतापनारायण ने इसका अनुवाद नहीं किया। सिर्फ इसकी छाया लेकर उन्होंने जो कविता लिखी है, वह इस प्रकार है—

प्रभावती

कैसी कमनीय है प्रभा प्रभात काल की।
दिनकर करि इत उजास, उत लहि ससि तेजनास,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कै रहे दसा प्रकास मानो जग-जाल की;
कुमुदिनी शोभा विहीन, विरहिन इव दुखित दीन,
लागति नैनन मलीन, देखत दिसि ताल की;
दरभ की कुटीन त्यागि, उठहि मोर जागि-जागि,
वे दिन ढिग लागि-लागि ऐंड़नि मृगमाल की;
इहि छिन सब साधु-संत, प्रेम-पूरि ह्वै इकंत,
सुमिरत महिमा अनन्त त्रिभुवन महिपाल की ॥१॥

दोहा

तो हमहूँ गुरुदेव सों, करैं निवेदन जाय;
नाथ होम-बेला भई, अरुन उदित दरसाय ॥२॥
बदरि बिरिछ के पात पै, ओस बुँद छबि छाय;
कैसी लगति सुहावनी, अरुन-उदय-दुति पाय ॥३॥

सवैया

सोई निसापति जो गिरि मेरु पै, पाँव धरै बिचरै निसि माहीं;
त्यों तम तोमहिं नासत जासु, मरीचिका श्रीहरि-धाम लौं जाहीं।
तेज गँवाय गिरै नभ ते सोउ भोर समै दबिकै रवि पाहीं;
या जग माहिं बड़ेहू-बड़ेन की दीसति है थिर संपति नाहीं ॥४॥

पं० प्रतापनारायण का अनुवाद इसी तरह का है। इसी से उनकी योग्यता का अन्दाजा पाठक कर सकते हैं। पिछला सवैया अपूर्व है; याद रखने लायक है; शिक्षा-पूर्ण है। अस्तु !

यहीं हम मिश्रजी के कविता विषयक विचारों पर भी प्रकाश डालना उचित समझते हैं। पहले कविता की भाषा लीजिए। उन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं में कविता की है। पर वास्तव में उनका भाषा-सम्बन्धी विचार यह है—

"जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावन्य कि उस स्वतंत्र भाषा में है, जो ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, बैसवारी और अपने ढङ्ग पर लाई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गई संस्कृत व फारसी से बन गई है, जिसे चंद से लेकर हरिश्चन्द्र तक प्रायः सब कवियों ने आदर दिया है। उसका अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बैठी बोलियों में ला सके, यह किसी कवि के बाप की मजाल नहीं।"

खड़ीबोली को तो पंडित प्रतापनारायण कविता के योग्य समझते ही नहीं थे। इसी से उनकी खड़ीबोली की कविताएँ अधिक नहीं हैं। इस विषय में वे यहाँ तक कहते थे—

"जो कविता नहीं जानते, वे अपनी बोली चाहें खड़ी रक्खें, चाहे कुदावें; पर कवि लोग अपनी प्यार की हुई बोली पर हुक्म चलाके उसकी स्वतंत्र मनोहरता का नाश नहीं करने के। जो कविता के समझने की शक्ति नहीं रखते, वे सीखने का उद्योग करें।"

मिश्रजी उर्दू से इतने नाराज नहीं थे। यद्यपि एक स्थल पर स्वयं ही उसे "सब भाषाओं का कूड़ा करकट" कहा है; तथापि दूसरे स्थान पर वे कहते हैं—

"कविता के लिए उर्दू बुरी नहीं है। कवित्व-रसिकों को वह वीर-ललना के हाव-भाव का मज़ा देती है।" इसके विपरीत, मिश्रजी खड़ी बोली से बहुत सख्त नाराज थे। एक स्थान पर उन्होंने कहा था—

"सिवाय फारसी छन्द और दो-तीन चाल की लावनियों के और कोई छन्द उसमें (खड़ी बोली में) बनाना भी ऐसा है, जैसे किसी कोमलांगी सुन्दरी को कोट-बूट पहिनाना।"

उस समय, किसी सीमा तक, उनका यह कथन सत्य समझा जाता था। कारण यह था कि हिन्दी का प्रचार हुए अधिक दिन नहीं हुए थे; पर वास्तव में, कविता की भाषा के विषय में उनका निश्चित मत—सिद्धान्त-वाक्य—यह था कि कविता की भाषा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

साधारण बोलचाल की भाषा से भिन्न रहे। उनकी कविता की भाषा जन-साधारण की भाषा ही है तथा कविता और गद्य की भाषा में विशेष अन्तर नहीं मिलता; पर उनका गद्य खड़ीबोली में और अच्छी कविता ब्रजभाषा में है। उनके ऊपर के कथन से इस बात का पता चलता है कि वे ब्रजभाषा को ही पूर्व-प्रचलित परिपाटी के कारण कविता के योग्य समझते थे। इसी से उनकी इस भाषा में की हुई कविता; दूसरी भाषाओं की कविता की अपेक्षा अधिक सरल और सुन्दर है। अन्य भाषाओं में पहले तो उन्होंने अधिक कविता लिखी ही नहीं है और जो लिखी भी वह साधारण ही है। इसका कारण, खड़ी बोली के लिए तो यह है कि उससे उन्हें एक प्रकार की घृणा-सी थी और उसे वे कविता के बिलकुल अयोग्य समझते थे और ब्रजभाषा के लिए यह कि वह उनकी मातृ-भाषा न थी।

यहाँ तक हमने मिश्रजी के कविता की भाषा-सम्बन्धी विचारों को ही स्पष्ट करने की चेष्टा की है; उनकी आलोचना नहीं। हम यह चाहते भी नहीं कि अभी उनकी बातों को काटने का प्रयत्न किया जाय। तत्कालीन हिन्दी-भाषा और साहित्य की परिस्थिति देखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि जो कुछ इन्होंने कहा उस समय वही प्रायः सभी साहित्य-सेवी कह रहे थे। हिन्दी वालों की यह धारणा हो गई थी कि ब्रजभाषा गद्य के लिए ठीक नहीं—गद्य के लिए हमें खड़ी बोली को ही अपनाना पड़ेगा—पर पद्य के लिए वह विशेष उपयुक्त समझी गई। इसका प्रधान कारण यह था कि खड़ी बोली का प्रचार कुछ समय पहले ही आरम्भ हुआ था। अस्तु!

एक स्थान पर आचार्य पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने कहा है—"कवि होना कठिन काम है। कवित्व में सिद्धि प्राप्त करने के लिए बहुत पुण्य चाहिए; हृदय में ईश्वरदत्त कवित्व-बीज चाहिए, परिश्रम भी चाहिए, अध्ययन भी चाहिए। दूसरे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शब्दों में सफल कवि वही हो सकता है, जिसमें प्रतिभा है।" हमारे पं० प्रतापनारायण प्रतिभावान थे। उनमें कविता करने की शक्ति थी, लहर थी, तरंग थी। उन्होंने कविता की, समय की दृष्टि से वह अच्छी भी है; पर वे खुल्लमखुल्ला उपदेश देते थे। आधुनिक दृष्टि से कविता का यह ढंग विशेष आदरणीय नहीं समझा जाता है किन्तु मिश्रजी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह उनकी व्यक्तिगत कमजोरी नहीं थी, समय और स्वभाव के कारण थी। भारतेन्दु ने भी बहुत कुछ लिखा है और उसमें खूब उपदेश दिया है—प्रकट और अप्रकट सभी तरह से। प्रकट रूप से उपदेश देना बुरा है, अप्रकट रूप से नहीं। यह आधुनिक आदर्श है। पर उस समय जो परिपाटी थी, जैसा लोग करते थे, वैसा ही पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने भी किया। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सभी प्रकार की कुरीतियाँ शीघ्र ही हमारे समाज से दूर हो जायँ। इसी से, सुधारक रूप में उन्होंने खूब उपदेश दिया है। परिस्थिति को देखते हुए इसे बुरा नहीं कहा जा सकता।

भाषा

पं० प्रतापनारायण मिश्र के प्रादुर्भाव के समय हिन्दी-भाषा के दो मुख्य रूप प्रचलित थे। एक पर संस्कृत का प्रभाव अधिक था और दूसरे पर अरबी-फारसी का। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन दोनों ही रूपों को न अपना कर निजी मार्ग बनाया और मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। मिश्रजी इस विषय में भारतेन्दुजी को ही अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे। अतः उन्होंने भी भारतेन्दुजी के बीच के मार्ग को ही अपनाया। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इन दोनों साहित्य-सेवियों के भाषा-विषयक सिद्धान्त एक से हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारन्तेदु हरिश्चन्द्रजी की भाषा में जितनी गहरी नागरिकता की छाप है, मिश्रजी की भाषा में उतना ही ग्रामीणता का पुट है। भारतेन्दुजी घरेलू शब्दों और मुहावरों को अपनी भाषा में प्रसन्नता से नहीं आने देते थे। इसके विपरीत मिश्रजी सदैव उनको अपनाने को तैयार रहते थे; यहाँ तक कि अपने अनेक लेखों के शीर्षक भी ग्रामीण मुहावरे ही रक्खे हैं। और मुहावरों के प्रयोग तो मिश्रजी ने बड़ी ही सुन्दर रीति से किये ही हैं। उदाहरण के लिये देखिये—

"डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में, चाहे जहाँ की जो बात हो जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है। हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर हैं। बात ही हाथी पाइए बाते हाथी पाँव। बात ही से पराए अपने और अपने पराए हो जाते हैं।"

मिश्रजी की भाषा में पूर्वीपन की झलक है। उन्होंने अपनी जन्मभूमि में प्रचलित ग्रामीण मुहावरों का निःसंकोच प्रयोग किया है। यदि कभी उन्हें अपना भाव प्रकट करने के लिए हिन्दी का कोई उचित शब्द न मिलता, तो वे संस्कृत या फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। पहले वे ग्रामीण शब्दों-द्वारा अपना भाव व्यक्त करने की चेष्टा करते, और यदि कृत-कार्य न होते, तो संस्कृत के उन शब्दों का प्रयोग करते जो अधिक प्रचलित होते। यदि कभी संस्कृत का शब्द भी ठीक न मिलता तो अरबी-फ़ारसी के अति-प्रचलित शब्द, जो हिन्दी से इतना घुल-मिल गये हैं कि विदेशी जान ही नहीं पड़ते—ढूँढ़ते। दूसरे शब्दों में, मिश्रजी किसी भाषा—अरबी, फारसी या संस्कृत—के शब्दों से घृणा नहीं करते थे; पर उनकी हार्दिक अभिलाषा यही रहती थी कि अति प्रचलित

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
शब्दों का ही प्रयोग किया जाय, तो अच्छा है। यही कारण है कि कहीं-कहीं उनकी भाषा में ग्रामीणता आ गयी है।

मिश्रजी की भाषा की दूसरी विशेषता है—घरेलू मुहावरों का उचित प्रयोग। इस पर हम "शैली" शीर्षक नोट के अन्तर्गत विचार करेंगे। यहाँ हम उनकी भाषा-विषयक दो-एक त्रुटियाँ दिखा देना भी आवश्यक समझते हैं।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र शब्दों के शुद्ध प्रयोग की ओर यथोचित ध्यान नहीं देते थे। 'रिषि', 'रितु', 'ग्रहस्त', 'लेखणी', 'औगुण' आदि अनेकानेक शब्दों को उन्होंने गलत लिखा है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, सम्भव है मिश्रजी ने इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और जल्दी में, असावधानी के कारण, इन शब्दों के ये रूप लिख गये हों। क्योंकि वह ब्रजभाषा के कवि थे। और ब्रजभाषा में ऐसे चुभने वाले बहुत से शब्द इसी रूप में बोले जाते हैं। लेकिन प्रचलित भाषा के वह बड़े पक्षपाती थे, इसी कारण अवगुण की जगह झुकते-झुकते भी वह औगुण लिखते थे। इसको त्रुटि वा दोष अथवा गलत कहना सरासर सत्य की हत्या करना है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि प्रूफ-रीडिंग करते समय विशेष सतर्कता से काम न लिया गया हो। हमारी समझ में पहला कारण ही ठीक है। प्रूफ में एक-आध स्थान पर गलती हो सकती है, जगह-जगह पर नहीं। सम्भव है, उच्चारण के कारण ही ये शब्द अशुद्ध लिखे गये हों। हमारी इस शंका की पुष्टि इस बात से भी होती है कि "ब्राह्मण" में संस्कृत के कुछ वाक्य भी अशुद्ध मिलते हैं। यथा—अहं पंडितम्। इससे प्रकट होता है कि उनको संस्कृत-व्याकरण का विशेष ज्ञान न था, यद्यपि वे उसमें कविता किया करते थे, जिसका कारण, शायद, उनकी प्रतिभा थी। एक तीसरी बात इस सम्बन्ध में यह भी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कही जा सकती है कि शब्दों के शुद्ध प्रयोग पर विशेष ध्यान न देना भी एक मतलब से था। पं० प्रतापनारायण मिश्र संस्कृत जानते थे। तुलसीदास भी तो संस्कृत जानते थे; परन्तु वे भी रितु ही लिखते थे, ऋतु नहीं। मेरी समझ में यदि हम संस्कृत की दुम में हिन्दी को न बाँधते, तो इस भाषा की अब तक बड़ी उन्नति हो गई होती। अस्तु।

पंडिताऊपन और पूर्वीपन की झलक के अतिरिक्त मिश्रजी की भाषा में व्याकरण-सम्बन्धी दोषों का भी बाहुल्य है; परन्तु इनके लिखने का ढंग इतना सादा और सरल था कि भाषा में स्वयं रोचकता आजाती थी और पाठकों का ध्यान उन त्रुटियों की ओर न जाता था। देखिये—

"यदि सचमुच हिन्दी का प्रचार चाहते हो, तो आपस के जितने कागज-पत्तर, लेखा-जोखा, टीम-तमस्सुक हों सबमें नागरी लिखी जाने का उद्योग करो। जिन हिन्दुओं के यहाँ मौलवीसाहब बिसमिल्लाह कराते हैं उनके यहाँ पंडितों से अक्षरारम्भ कराने का उपकार करो। चाहे कोई हँसे, चाहे धमकावे, जो हो सो हो, तुम मनसा वाचा, कर्मणा उर्दू को लुलू देने में सन्नद्ध हो। इधर सरकार से भी झगड़े खुशामद करो, दाँत निकालो, पेट दिखाओ, मेमोरियल भेजो, एक बार दुतकारे जाओ फिर धन्ने धरो, किसी भाँति हतोत्साह न हो, हिम्मत न हारो, जो मनसाराम कचियाने लगें तो यह मंत्र सुनादो···बस फिर देखना पाँच-सात बरस में फारसी छार सी उड़ जायगी। नहीं तो होता तो परमेश्वर के किए है हम सदा यही कहा करेंगे "पीस का चुकरा गावैं का छीता हरन" "घूरे के लत्ता बिन्नै कनातन का डौल बांधैं" हमारी भी कोई सुनैगा? देखें कौन माई का लाल पहले सिर उठाता है।"

कवि के इन भावों को गलत बतलाने वाले देवताओं को प्रणाम है। व्याकरण के दोष आप उनकी भाषा में भरने चले

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
हैं। पहले आप अपनी भाषा तो ठीक करलें—अपनी आँखों का सहतीर देखें पीछे दूसरे की फूली।

दूसरी कमी विरामों का प्रयोग न करना है। उस समय हिन्दी में इतने विराम-चिह्न प्रचलित नहीं थे, जितने आजकल हैं; पर जो थे, उनका भी प्रयोग मिश्रजी ने नहीं किया है। यदि पाठक ध्यान देकर न पढ़े, तो कम से कम एक बार तो उसे सब वाक्य आपस में सटे हुए प्रतीत होंगे और वह उनका ठीक-ठीक आशय न समझ पायगा; पर हम पंडितजी को इस दोष का दोषी नहीं कह सकते। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में बहुत से लोग विरामों का प्रयोग नहीं करते थे। यहाँ तक कि बाबू श्यामसुन्दरदास की आचार्य द्विवेदीजी को लिखी हुईं, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की जो चिट्ठियाँ हैं, उनमें तो पूर्ण विराम की जगह फुलस्टाप रख कर काम चलाया गया है।

फिर भी, समय को देखते हुए हमें यह कहना पड़ेगा कि मिश्रजी ने हिन्दी की बड़ी सेवा की। कहा जाता है कि उस समय का प्रत्येक लेखक हिन्दी गद्य के लिए कुछ न कुछ कर गया। जिसने थोड़ा किया, उसको भी समय ने बड़ा महत्व दिलाया, तब फिर पंडितजी का कहना ही क्या है। वे तो हिन्दी के सच्चे सेवक और पक्षपाती थे; परन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह कहना ही पड़ेगा कि प्रतापनारायण की भाषा का रूप बड़ा ही अस्थिर था। यद्यपि यह ठीक है कि उनके समय तक हिन्दी-गद्य का विशेष विकास तथा परिष्कार नहीं हुआ था; परन्तु गद्य का जो विकसित और परिष्कृत रूप हमें उनके कुछ समकालीन लेखकों में देखने को मिलता है, उसका भी मिश्रजी विशेष अनुसरण न कर सके। इसी कारण उनकी भाषा अनियंत्रित और कुछ प्राचीन सी रह गई है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"इस समय के गद्य की आलोचना तो आप न करें आप ही यदि इस प्रबन्ध के लेखक हैं दूसरे के सहारे नहीं चल रहे हैं तब तो मैं कहूँगा कि आपने उस समय के गद्य देखे ही नहीं—सार-सुधानिधि, उचित वक्ता, भारतेन्दु भाषा-भूषण आदि आप देखें तब आपको आटा दाल का हाल मालूम होवे।"

शैली

मिश्रजी की शैली दो प्रकार की थी। पहली में गम्भीरता है और दूसरी हास्य-रस पूर्ण। पहले प्रकार की शैली के उदाहरण बहुत कम हैं; शायद उन्होंने एक-आध लेख ही ऐसा लिखा है, जिसमें गंभीरता का पुट है। इस प्रकार की शैली का उदाहरण हम यहाँ पर दे रहे हैं—

"शरीर के द्वारा जितने काम किये जाते हैं, उन सबमें मन का लगाव अवश्य रहता है। जिनमें मन प्रसन्न रहता है वही उत्तमता से होते हैं और जो उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं होते, वह वास्तव में चाहे अच्छे काम भी हों किन्तु भले प्रकार पूर्ण रीति से सम्पादित नहीं होते न उनका कर्त्ता ही यथोचित आनन्द लाभ करता है। इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छन्द रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है यदि रोका न जाय तो कुछ काल में आलस्य और अकृत्य का व्यसन उत्पन्न करके जीवन को व्यर्थ और अनर्थ-पूर्ण कर देता है।"

संयत और गम्भीर भाषा का एक उदाहरण—"जहाँ पढ़ने लिखने आदि में कष्ट सहते हो वहाँ मन को सुयोग्य बनाने में भी त्रुटि न करो, ने चेत् दिव्य जीवन लाभ करने में अयोग्य रह जाओगे। इससे सब कर्तव्यों की भाँति उपर्युक्त विचार का अभ्यास करते रहना मुख्य कार्य समझो तो थोड़े ही दिनों में मन तुम्हारा मित्र बन जायगा और सर्व काल उक्त पथ में विचरण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
करने तथा उत्साहित रहने का उसे स्वभाव पड़ जायगा। तथा दैवयोग से यदि कोई विशेष खेद का कारण उपस्थित होगा जिसे नित्य के अभ्यास उपाय दूर न कर सकें उस दशा में भी इतनी घबराहट तो उपयोगी नहीं जितनी अनभ्यासियों को होती है क्योंकि विचार-शक्ति इतना अवश्य समझा देगी कि सुख-दुख सदा आया ही जाया करते हैं।"

इस अवतरण में विरामादि चिह्नों का रूप साधारण-सा ही है। यह दोष है।

इस उद्धरण से यह बात पूर्ण स्पष्ट हो जाती है कि मिश्रजी गम्भीर और विचारात्मक गद्य भी लिख सकते थे; पर ऐसा करना, एक प्रकार से, उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। वे सदैव इसी बात की चेष्टा किया करते थे कि चाहे जैसा भी विषय हो, उसे विनोद-पूर्ण और मनोरञ्जक बना दिया जाय। इस बात को स्वयं उन्होंने "ब्राह्मण के उद्देश्य" शीर्षक टिप्पणी में लिख भी दिया था—

"हाँ, एक बात रही जाती है कि हम में कुछ औगुण भी हैं सो सुनिये। जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली की पैदा-इस प्रसिद्ध ही है। कभी कोई हँसी कर बैठें तो क्षमा कीजियेगा। सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगी। वास्तविक वैर हमको किसी से भी नहीं है पर अपने करम लेख से लाचार हैं। सच कह देने में हमको संकोच न होगा। इससे जो महाशय हम पर अप्रसन्न होना चाहें पहिले उन्हें अपनी भूल पर अप्रसन्न होना चाहिए।"

मिश्रजी की इस शैली का उदाहरण देने की हमें कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उनका कोई भी लेख उठा लिया जाय, इस शैली का उदाहरण मिल जायगा। फिर भी उनकी विनोदी प्रकृति से परिचित होने के लिए यहाँ एक छोटा सा अवतरण दिया जाता है—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

"यह तो समझिये यह देश कौन है ? वही न जहाँ पूज्य मूर्तियाँ भी, दो-एक को छोड़ चक्र वा त्रिशूल वा खड्ग वा धनुष से खाली नहीं हैं, जहाँ धर्म-ग्रन्थों में भी धनुर्वेद मौजूद है, जहाँ शृङ्गार-रस में भी भूचाल और कटाक्ष-बाण, तेग़-अदा व कमाने-अब्रू-का वर्णन होता है। यहाँ से लड़ाई-भिड़ाई का सर्वथा अभाव हो जाना यानी सर्वनाश हो जाना है। अभी हिन्दुस्तान में कोई वस्तु का निरा अभाव नहीं हुआ। सब बातों की भाँति वीरता भी लस्टम-पस्टम बनी ही है। पर क्या कीजिये, अवसर न मिलने ही से 'बँधे बछेड़ा कट्टर होइगे बइठे ज्वान गये तोदिआय'।"

यह अवतरण "दशहरा और मुहर्रम" शीर्षक नोट से लिया गया है। व्यंग्य और विनोद की पुट प्रत्यक्ष परिलक्षित है। इस शैली का यह एक अच्छा नमूना है।

मिश्रजी ने किसी बात को सीधे-सादे ढङ्ग से नहीं कहा, यद्यपि उनकी भाषा सीधी-सादी और सरल होती थी। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वे प्रत्येक विषय को हास्य और विनोद-पूर्ण बनाना चाहते थे; पर उनका यह ढङ्ग हमें खटकता नहीं। ज्यों-ज्यों हम उनके लेख पढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी रोचकता बढ़ती जाती है। उनकी शैली की यह भी एक विशेषता है।

पं० प्रतापनारायण के लेखों के शीर्षक भी विचित्र ही होते थे। 'मरे को मारे साह मदार', 'ऊँच निवास नीच करतूती', 'घूरै के लत्ता बिन्नैं कनातन का डौल बाँधैं', 'जानैं न बूझैं कठौता लैकैं जूझैं', 'टेढ़ जानि शंका सब काहू'। इस प्रकार के शीर्षक से हमें लेख के विषय का थोड़ा-बहुत परिचय मिल जाता है। पर जहाँ उन्होंने 'ट', 'द', 'भौं', 'आप' आदि शीर्षक दिए हैं, वहाँ हम इस बात का अनुमान ही नहीं कर सकते कि लेखक का उद्देश्य या लेख का विषय क्या है। जान पड़ता है, ऐसे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
शीर्षक रखने की परिपाटी उस समय प्रचलित भी थी। कारण 'द' शीर्षक नोट में मिश्रजी ने लिखा है—

"हमारे श्रेष्ठ सहयोगी 'हिन्दी-प्रदीप' सिद्ध कर चुके हैं लकार बड़ी ललित और रसीली होती है।"

इस कथन से ध्वनि निकलती है कि पं० बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' में 'ल' शीर्षक कोई लेख प्रकाशित हुआ था। उसी का हवाला यहाँ पं० प्रतापनारायण ने दिया है।

मिश्रजी की शैली-विषयक एक बात और भी उल्लेखनीय है। वह है उनकी रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की छाप। इस का तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों हम उनके लेख पढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी प्रकृति आदि से हम परिचित होते जाते हैं। तथा अन्य विशेषाताएँ जानने की इच्छा प्रबल होती जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पं० प्रतापनारायण ने अपनी विद्वता प्रदर्शित करने की कभी चेष्टा नहीं की; वरन् उन्होंने सीधे-सादे सरल ढङ्ग को ही अपनाया। जब कृत्रिमता रही नहीं, तब हम उनकी रचनाओं में समानता पाते हैं। यही समानता और सरलता मिश्रजी की शैली की घनिष्टता का कारण जान पड़ती है।

अपनी इस अन्तिम विशेषता के कारण ही मिश्रजी का स्थान अपने समकालीन हिन्दी-साहित्य-सेवियों से ही नहीं, द्विवेदी-युग के कुछ साहित्य-निर्माताओं से भी ऊँचा हो जाता है।

उपसंहार

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। इन तीनों ही साहित्य सेवियों का उद्देश्य हिन्दी भाषा की उन्नति करना था। पर भट्ट जी में साहित्यिकता अधिक थी; मिश्रजी और भारतेन्दुजी साहित्य-सेवा के साथ सामाजिक और राजनैतिक उन्नति की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ओर भी ध्यान देते रहते थे। दूसरी बात यह है कि यह दोनों महाशय जन-साधारण की रुचि के अनुसार और साथ ही परिस्थिति के अनुकूल कविता भी किया करते थे। यह भी इनकी प्रसिद्धि का एक कारण है।

पर भारतेन्दु और मिश्रजी की तुलना नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि मिश्रजी के कुछ लेख बहुत सुन्दर हैं और भारतेन्दु जी के लेख भी, साधारणतः उनसे टक्कर नहीं ले सकते; पर साहित्य सेवा की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जितना कार्य किया है उतना क्या उसका चौथा हिस्सा भी मिश्रजी ने नहीं किया। वह समय था—मिश्रजी बराबर कहा करते थे कि भारतेन्दु धनी आदमी थे उन्होंने कई लाख खर्च कर दिया। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं बहुत कुछ कर चलता। आज भी रुपये और रुपये द्वारा कनवेसिंग के बल से जो हो रहा है वह प्रकट है।

भारतेन्दु की कविता भी मिश्रजी की कविता से आकार-प्रकार में बहुत बढ़ी चढ़ी है—यद्यपि जनता मिश्रजी की कविता का भी आदर करती थी। इसके अतिरिक्त, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भारतेन्दुजी में नागरिकता और मिश्रजी में ग्रामीणता अधिक थी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मिश्रजी का शिष्ट समाज में, मान ही न था। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तो उनके ऐसे मित्र थे, जो उनसे प्रायः मिलने आते थे। मिश्रजी उनका बड़े प्रेम से स्वागत कर के उनके जलपान के लिए दो पैसे के पेड़े मँगाया करते थे। काँग्रेस के जन्म-दाता स्वर्गीय ह्यूम साहबजी उनका बड़ा आदर करते थे। इलाहाबाद की काँग्रेस के अवसर पर जब मिश्रजी कानपूर के प्रतिनिधि की हैसियत से गए थे, ह्यूम साहब ने कुशल-समाचार पूछते-पूछते उन्हें सप्रेम छाती से लगा लिया था। स्वयं भारतेन्दुजी ने उनकी प्रशंसा की थी।

Digitization by American Academy of Indic Studies, Fremont (USA)

साहित्यिक क्षेत्र में भी उनका अच्छा आदर है। यद्यपि उनके कुछ लेखों में, आधुनिक दृष्टि से परीक्षा करने पर, भाषा और विराम संबंधी दोष दिखाई देते हैं। कभी-कभी विषय से बाहर होकर वे इधर-उधर की बातें भी घसीट लिया करते थे, तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि जनता का उनके लेखों से बड़ा मनोरञ्जन होता था और शिष्ट हास्य और व्यंग की उनमें जैसी पुट मिलती है, वैसी आज के भी बहुत से लेखकों के लेखों में नहीं दिखाई देती। साथ ही उनकी लेखनशैली की यह भी एक विशेषता है कि उसमें मिश्रजी के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इसका तात्पर्य यह है कि लेख को पढ़ कर हम उसके लेखक के—उनके—भाव, विचार, स्वभाव, उद्देश्य, आदर्श आदि से भी परिचित हो सकते है। यह बात बहुत कम लोगों में दिखाई जाती है। शैली व्यक्तित्व की परिचायक हो—यह सभी लेखकों के लिए नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से, इनकी तुलना, इनके पहले के लेखों में, केवल इन्शाअल्लाखाँ से ही की जा सकती है।

संक्षेप में, मिश्रजी सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों के मामलों में अपने समय से बहुत आगे थे—आज ५०-६०-वर्ष बाद जिन सुधारों के लिए हम प्रयत्नशील हैं उनकी ओर इतने समय पहले ही वे संकेत कर चुके थे। जब प्रायः समस्त देश विदेशीय रङ्ग में रङ्ग रहा हो, उस समय जन्म लेकर भी वे बहुत कुछ कर सके। उनकी साहित्य सेवा भी स्तुत्य है। वास्तव में यह हमारा दुर्भाग्य ही था, कि ३८ वर्ष की छोटी अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

—प्रेमनारायण टण्डन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)